जैनधर्म की कहानियाँ

भाग-६

अकलंक - निकलंक
नाटक

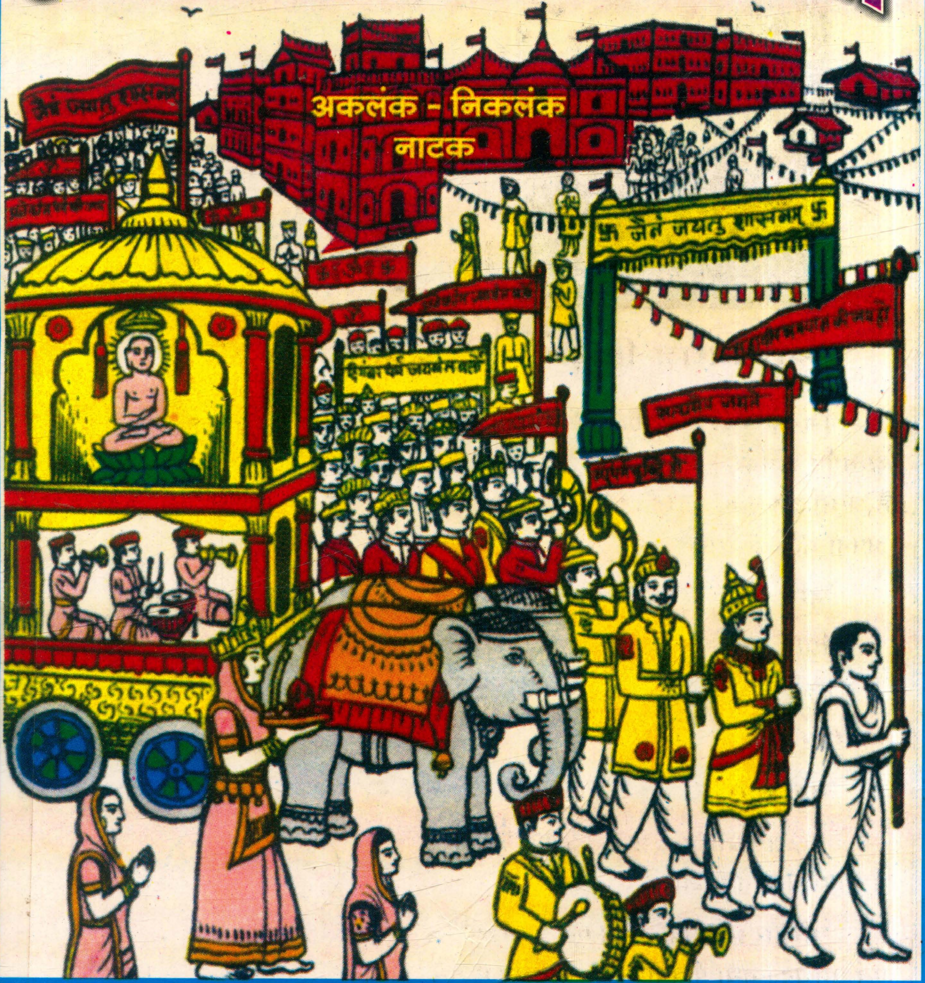

प्रकाशक :

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला संक्षिप्त परिचय

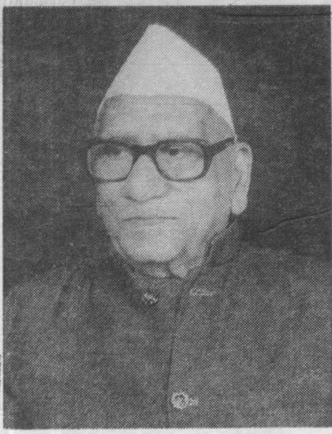

श्री खेमराज गिड़िया

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया

जिनके विशेष आशीर्वाद व सहयोग से ग्रन्थमाला की स्थापना हुई तथा जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य प्रकाशित करने का कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा है, ऐसी इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् 1919 चांदरख (जोधपुर)

पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : मात्र प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

सत्-समागम : सन् 1950 में पूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : मात्र 34 वर्ष की उम्र में सन् 1953 में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली।

परिवार : आपके 4 पुत्र एवं 2 पुत्रियाँ हैं। पुत्र – दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल एवं प्रेमचंद। तथा पुत्रियाँ – ब्र. ताराबेन एवं मैनाबेन। दोनों पुत्रियों ने मात्र 18 वर्ष एवं 20 वर्ष की उम्र में ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर सोनगढ़ को ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने। सन् 1959 में खैरागढ़ में जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभ हस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया। सन् 1988 में 25 दिवसीय 70 यात्रियों सहित दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं अनेक सामाजिक कार्यों के अलावा अब व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना में बिताते हैं।

छहढ़ाला वर्ष के अन्तर्गत्
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला का १०वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग ६)

लेखक :
ब्र० हरिभाई, सोनगढ़

सम्पादक :
पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
महावीर चौक, खैरागढ़ - ४९१८८१ (मध्यप्रदेश)
और
श्री कहान स्मृति प्रकाशन
सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ - ३६४२५० (सौराष्ट्र)

अबतक - १५,००० प्रतियाँ
तृतीय आवृत्ति - ५,००० प्रतियाँ
१५ नवम्बर, २००१ (महावीर निर्वाण महोत्सव)

न्यौछावर – सात रुपये मात्र

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति स्थान –

- **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा – खैरागढ़**
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
  खैरागढ़ – ४९१८८१, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५ (राज.)

- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़ - ३६४२५०
  जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

अनुक्रमणिका

अकलंक-निकलंक (नाटक-गद्य)	११
अकलंक-निकलंक (नाटक-पद्य)	७१
आचार्य अकलंक देव (संक्षिप्त-परिचय)	७७
मोह की हार	८०

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –
जैन कम्प्यूटर्स,
श्री टोडरमल स्मारक भवन, मंगलधाम,
ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५
फोन : ०१४१-७००७५१
फैक्स : ०१४१-५१९२६५

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत जैनधर्म की कहानियाँ भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ एवं अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह), चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़दोहा-भव्यामृत शतक, आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट – इसप्रकार इक्कीस पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग ६ के रूप में अकलंक-निकलंक (नाटक-गद्य), अकलंक-निकलंक (नाटक-पद्य) एवं आचार्य अकलंक देव का संक्षिप्त-परिचय प्रकाशित किया जा रहा है। सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम इनके आभारी हैं।

आशा है इस नाटक कथा का स्वाध्याय कर पाठकगण एवं मंचन कर कलाकर गण व दर्शक गण अवश्य ही बोध प्राप्त करेंगे। तथा सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बनाएँगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। ऐसी भावी योजना में शान्तिनाथ पुराण, आदिनाथ पुराण आदि प्रकाशित करने की योजना है।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

प्रेमचन्द जैन
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

जन्म	**स्वर्गवास**
१/१२/१९७८	२/२/१९९३
(खैरागढ़, म.प्र.)	**(दुर्ग पंचकल्याणक)**

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभिता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे - ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे —ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**बहन**	सुश्री क्षमा जैन
जीजा-	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव

पिता- स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती सन्तोषबाई बरडिया

पिता-स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दंपत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् १९९३ में आप लोगों ने ८० साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष - पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार:

पुत्र

ललित, निर्मल, अनिल एवं सुशील

पुत्रियाँ

चन्दकला बोथरा, भिलाई एवं शशिकला पालावत, जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह,
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की

ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली

ग्रन्थमाला परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री प्रकाशभाई मेहता, नेपाल
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन, गिड़िया, खैरागढ़

ग्रंथमाला संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह.– श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, सोनगढ़
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
श्रीमती कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़

श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
सौ. सुमन जयकुमार जैन, डोंगरगढ़
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल सागर,
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध. प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी. आरती जैन पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता बाबूलाल जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल

'परोपकार में तत्पर सज्जन पुरुष परोपकार करते समय अपनी आपत्ति का विचार नहीं करते।' अतएव अपने दाँतों से तिरछा प्रहार करनेवाले उस हाथी को जीवन्धरकुमार ने अपने साहस और सामर्थ्य से दूर भगाकर गुणमाला के प्राणों की रक्षा की।

– क्षत्रचूड़ामणि, चौथा लम्ब, श्लोक -३३ का सरलार्थ

साहित्य प्रकाशन फण्ड

अरविन्द बा रोकड़े हस्ते अभय रोकड़े डोविवली (पूर्व) मुम्बई	१००१/-
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर	५०१/-
शीप्रा जैन विबोध जैन, दिल्ली	५०१/-
चिद्रूप शाह, मुम्बई	३३३/-
सौ. मंजुलाबेन नगीनदास मेहता, कांदीबली-मुम्बई	२५१/-
सौ. चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़	२५१/-
कहान ज्वैलर्स हस्ते-श्री अभयकुमार-समता-नम्रता, खैरागढ़	२५१/-
सौ. झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़	२५१/-
उषाबेन सावलकर, नागपुर	२५१/-
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर	२५१/-
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली	२०१/-
सौ. कंचनदेवी दुलीचन्द जैन, खैरागढ़ हस्ते कमलेश जैन खैरागढ़	२०१/-
स्व. नेमीचन्दजी हस्ते सूरजबाई अलिजार, जबलपुर	२०१/-
स्व. मथुरादेवी कँवरलालभाई हस्ते ढ़ेलाबाई, खैरागढ़	२०१/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सौनगढ़	२०१/-
सौ. गुलाबबेन पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़	२०१/-
धीरज श्री, सोनगढ़	२०१/-
श्री रमेशचन्द अभयकुमार जैन, खतौरा	१२५/-
चौ. फूलचन्द चैरीटेविल ट्रस्ट, मुम्बई	१११/-
ताराबेन नन्दरवार वाला स्व. टीकू एन. शाह के स्मरणार्थ, सुरेन्द्रनगर	१११/-
सौ. वन्दनाबेन जितेन्द्रकुमार जैन, खैरागढ़ हस्ते जयति खैरागढ	१०१/-
कस्तूरचन्द जैन, डोंगरगॉव	१०१/-
सौ. कंचनदेवी पन्नालाल, खैरागढ़ हस्ते मनोज खैरागढ	१०१/-
निलेश शामजी शाह, गोरेगॉव	१०१/-
विपुल शामजी शाह, गोरेगॉव	१०१/-
श्रद्धा पूजा सतीश शाह, मलाड	१०१/-
ऋषभ-रुचि-चन्द्रकान्त कामदार, राजकोट	१०१/-
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड	१०१/-

शोक शरीर को सुखाता है, पाप का बंध करता है एवं महामोह का मूल है ।– अध्यात्मयोगी राम से साभार, पेज-१६

गलती पर गलती करने का फल

अयोध्या नगरी में क्षीरकदम्ब नाम का एक ब्राह्मण था उसके पास नारद, पर्वत, वसु, ये तीन शिष्य पढ़ते थे। इनमें पर्वत उन्हीं का लड़का था तथा वसु वहाँ के राजा का एवं नारद सेठ का लड़का था। वे तीनों पढ़ने के बाद अपने-अपने घर जाकर अपना-अपना कार्य करने लगे। एक दिन पर्वत कथा कहते हुए होम करने के लिये अज नाम बकरे का बता रहा था। इतने में नारद का वहाँ से निकलना हुआ, उसने कहा– ऐसा मत कहो 'अज नाम तो जवा का है और जवा ही होम के कामआता है।' पर्वत ने सुनते ही कहा– 'मैं जो कह रहा हूँ वही सत्य है आप मेरे बीच में मत बोलो।' नारद ने कहा– 'यह तेरा उपदेश पापमय है, मेरी न माने तो अपने साथी वसु, जो वर्तमान में राजपद पर स्थित हैं, उनसे निर्णय ले सकते हैं; तब उसके उत्तर देने के पहले ही उसकी शिष्य मंडली कहने लगी। यह ठीक है –इसका निर्णय राजा के पास ही होगा और जो झूँठा निकलेगा वह दण्ड का भी भागी होगा।

इधर, पर्वत अपनी माँ से आकर पूछता है कि माँ अज नाम बकरे का ही है, जो यज्ञों में होम के काम आता है। नहीं नहीं बेटा ! अब कहा सो कहा, अब मत कहना। पर्वत कहता है माँ ! इसका निर्णय कल दरबार में राजा वसु करेंगे; क्योंकि मेरी और नारद की बात को सुनकर शिष्यमण्डली ने यही तय किया है। अब क्या होगा ? बुरा हुआ, हो सकता है राजा सत्यवान हैं, मौत की सजा दे देवें।

माँ की ममता तो देखो, जानते हुए भी राजा के पास पहुँचकर, "हे वसु ! मेरी पहले की धरोहर है; ध्यान करो, मैंने तुम्हें पढ़ते समय गुरुजी से पीटते बचाया था, तब आपने राजपद पाने के बाद दक्षिणा देने की बात कही थी, सो आप सत्यवादी हैं, आप मेरी दक्षिणा देने में न नहीं करेंगे। मुझे विश्वास है जल्दी हाँ कीजिए ! हाँ कीजिए !! कहकर 'दक्षिणा में पर्वत कहै सो सत्य' –ऐसा कहना माँग लिया।"

गुरानी के मोह में बिना कारण पूछें राजा वसु ने हाँ भर दी और सभा में जानते हुए भी पर्वत कहे सो सत्य कह दिया। फल यह हुआ कि मयसिंहासन के राजा वसु धरती में धँस गया और मरण कर नरकगति को प्राप्त हुआ तथा वहाँ सेठजी की विजय हुई एवं पर्वत को अपमानित होना पड़ा। जिसके कारण वह तापसी बना तथा कुतप के योग से राक्षस होकर उसने वही खोटामार्ग चलाया व सप्तम नरक में गया।

उक्त कथा से हमें शिक्षा मिलती है कि गलती को गलती मानकर छोड़ने का प्रयत्न करें, क्योंकि गलती को सही बताने वालों की खोटी गति ही होती है।

–पद्मपुराण के आधार से

अकलंक-निकलंक

(नाटक)

मंगल प्रार्थना

हे सिद्धप्रभुजी! आपको, करूँ याद अपने आत्म में।
मुझ आत्म जीवन ध्येय बनकर, नाथ बसिये हृदय में।।

सर्वज्ञ सीमन्धर प्रभु अरु, वीर स्वामी भरत के।
शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय से, प्रभु आप मेरे ध्येय हैं।।

आचार्य कुन्दकुन्द आदि को, अरु सर्व मुनि भगवन्त को।
वनवासी मुनिवर संत को, करूँ स्मरण वन्दन भक्ति से।।

जिनवाणी भगवती मात! अपना, हाथ रख मम शीश पर।
करके कृपा हे देवी! मुझ पर, दे मुझे सम्यक्त्व को।।

नमता हूँ गुरुवर कहान को, जीवन के मम आधार को।
जो सींचते वैराग्य से, भरपूर ज्ञानामृत अहो।।

वन्दन करूँ मैं मात तुमको, भक्ति के बहुभाव से।
जो नित्य देती प्रेरणा, भरपूर बहु वात्सल्य से।।

प्रथम अंक

बलिदान

पहला दृश्य:-

(जंगल में मुनिराज बैठे हैं, यह दिखाने के लिए चित्र या फोटो रखें। वहाँ बालक खेलने के लिए आते हैं। अकलंक-निकलंक के बचपन का नाम अकु और निकु है।)

अकलंक : निकु! आज हम कौन-सा खेल खेलेंगे?

निकलंक : भाई! आज से तो दशलक्षण महापर्व प्रारम्भ हुआ है। इसलिए हम इन धर्म के दिनों में खेलना-कूदना बन्द करके धर्म की आराधना करें तो कितना अच्छा रहे?

ज्योति : हाँ भाई निकु! तुम्हारी बात बहुत अच्छी है।

आशीष : तो चलो, हम सब इसी समय धर्म-चर्चा प्रारंभ करते हैं।

हंसमुख : हाँ भाई आशीष! चलो तत्त्वचर्चा में सभी को आनंद आयेगा।

पारस : अहो! देवलोक के देव भी हजारों-लाखों वर्षों तक धर्म-चर्चा करते हैं। आत्मस्वरूप की चर्चा सुनने का मुझे भी बहुत रस है।

चन्द्र : हाँ तुम बचपन से ही बहुत रुचिवान हो।

भरत : चलो! हम अकु-निकु से प्रश्न पूछते हैं और वे हमें समझायेंगे।

अकलंक : बहुत अच्छा, खुशी से पूछो। तत्त्वचर्चा से हमें भी आनन्द होगा।

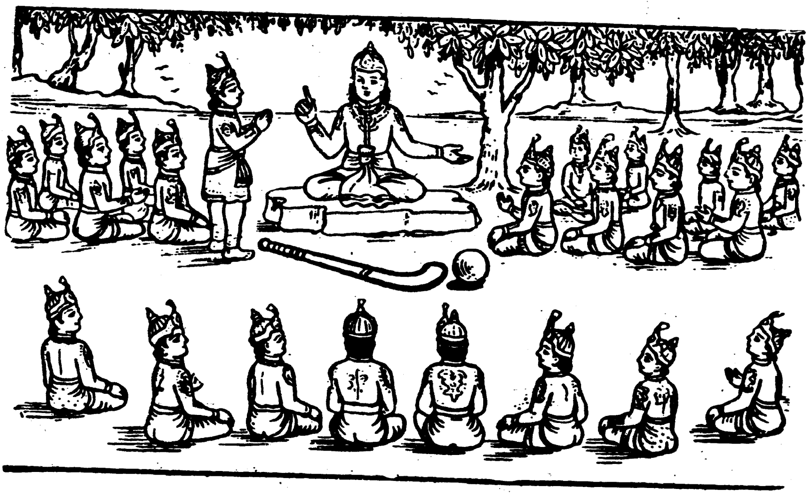

ज्योति : भाई! अनन्तकाल में हमको यह मनुष्य जन्म मिला है तो अब इस जीवन में करने योग्य कार्य क्या हैं?

अकलंक : मनुष्य जीवन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करने योग्य कार्य है।

आशीष : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना किस प्रकार होती है?

निकलंक : इस रत्नत्रय के मुख्य आराधक तो मुनिराज हैं, वे चैतन्य स्वरूप में लीन रहकर रत्नत्रय की आराधना करते हैं।

हंसमुख : रत्नत्रय के मुख्य आराधक मुनिराज हैं। तो क्या गृहस्थों के भी रत्नत्रय की आराधना हो सकती है?

अकलंक : हाँ, एक अंशरूप में रत्नत्रय की आराधना गृहस्थों के भी हो सकती है।

पारस : क्या अपने-जैसे छोटे बालक भी रत्नत्रय की आराधना कर सकते हैं?

निकलंक : हाँ, जरूर कर सकते हैं, परन्तु उस रत्नत्रय का मूल बीज सम्यग्दर्शन है, पहले उसकी आराधना करनी चाहिए।

चन्द्र : अहो! सम्यग्दर्शन की तो अपार महिमा सुनी है। हे भाई! यह बताओ कि उस सम्यग्दर्शन की आराधना किस प्रकार से हो?

अकलंक : आत्मा की वास्तविक लगन (रुचि) लगाकर ज्ञानी संतों के पास से पहले उसकी समझ करनी चाहिए और फिर अंतर्मुख होकर उसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है।

भरत : ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा का कैसा अनुभव होता है?

निकलंक : अहा! उसका क्या वर्णन करना? सिद्ध भगवान के समान वचनातीत आनन्द का अनुभव वहाँ होता है।

(अब अकलंक-निकलंक पूछते हैं और अन्य बालक जवाब देते हैं।)

अकलंक : देखो! मोक्षशास्त्र में कहा है कि ''तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'' वह व्यवहार श्रद्धा है या निश्चय?

ज्योति : वह निश्चय श्रद्धा है, क्योंकि वहाँ मोक्षमार्ग बताना है और सच्चा मोक्षमार्ग तो निश्चय रत्नत्रय ही है।

निकलंक : तत्त्व कितने हैं?

आशीष : तत्त्व नौ हैं और उन नौ तत्त्वों की श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है।

अकलंक : उन नौ तत्त्वों के नाम बताओ?

हंसमुख : जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष– ये नौ तत्त्व हैं।

निकलंक : इन नौ तत्त्वों में उपादेय तत्त्व कौन-कौन से हैं?

पारस : नव तत्त्वों में से शुद्ध जीव तत्त्व उपादेय है तथा संवर-निर्जरा तत्त्व एकदेश उपादेय है और मोक्ष तत्त्व पूर्ण उपादेय है।

अकलंक : बाकी कौन-कौन से तत्त्व रहे?

चन्द्र : बाकी अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध ये पांच तत्त्व रहे। ये पांचों तत्त्व हेय हैं।

चन्द्र : वाह! आज सम्यग्दर्शन, पाप और हेय-उपादेय तत्त्व की बहुत ही सुन्दर चर्चा हुई। हम सबको इसके ऊपर गहरा विचार करके सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना चाहिए।

निकलंक : हाँ भाईयो! सबको यही करने योग्य है। घर जाकर सब इस का ही प्रयत्न करना। इससे ही जीवन की सफलता है।

(एक और पर्दा ऊँचा होने पर मुनिराज दिखाई देते हैं। बच्चे हर्षपूर्वक कहते हैं—)

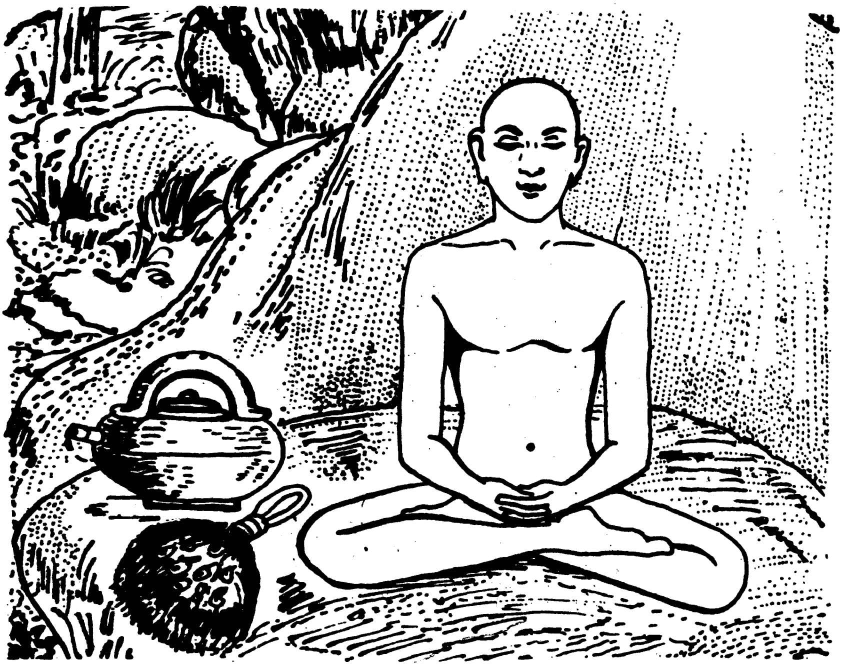

बच्चे : अहो, देखो! देखो!! कोई मुनिराज बैठै हुए दिखाई दे रहे हैं।

अकु-निकु : वाह! धन्य घड़ी! धन्य भाग्य!! चलो हम वहाँ जाकर उनके दर्शन करते हैं।

(सभी बालक मुनिराज के पास जाकर नमस्कार करते हैं और स्तुति बोलते हैं:—)

धन्य मुनीश्वर आतम-हित में छोड़ दिया परिवार।
कि तुमने छोड़ा सब घरबार।।
धन छोड़ा वैभव छोड़ा समझा जगत असार,
कि तुमने छोड़ा सब संसार।।टेक।।

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब धरते।
निज पद के आनंद में झूलते, उपशम रस की धार बरसते,
आत्म-स्वरूप में झूलते, करते निज आतम उद्धार।
कि तुमने छोड़ा सब संसार।।

निकलंक : भाई! चलो, हम गांव में जाकर मुनिराज के समाचार जल्दी-जल्दी सबको पहुँचाते हैं।

अकलंक : हाँ, चलो। सब एक साथ बोलिए— वीतरागी मुनिराजों की जय! दिगम्बर सन्तों की जय!!

जगत में जीव का वही सच्चा मित्र है तथा वही सच्चा बन्धु है, जो उसे धर्म-सवन में सहायक हो। धर्म-सेवन में जो विघ्न करता है, वह तो शत्रु है।

अहो! मुनिराज भव्यजीवों को धर्मोपदेश रूपी हाथों से सहारा देकर पाप के भयंकर समुद्र से पार कराते हैं और मोक्ष के मार्ग में लगाते हैं, वे ही जीव के सच्चे बन्धु हैं।

और क्या कहें? थोड़े में इतना समझ लेना कि जगत में जो कुछ बुरा है, दु:ख है, दरिद्रता है, निन्दा, अपमान, रोग, आधि-व्याधि हैं, वे सब पाप से ही उत्पन्न होते हैं।

इसलिए हे बुद्धिमान! अगर तू इन दु:खों से बचना चाहता है और स्वर्ग-मोक्ष के सुख को चाहता है तो बुद्धिपूर्वक हिंसादि पापों को छोड़... और सम्यक्त्व सहित उत्तम क्षमादि धर्मों का सेवन कर।

– सकलकीर्ति श्रावकाचार

दूसरा दृश्य:-

(शास्त्र सभा चल रही है, उसमें अकलंक-निकलंक के पिताजी श्री पुरुषोत्तम सेठ नियमसार गाथा-९० पढ़ रहे हैं। श्रोतागण सुन रहे हैं।)

पुरुषोत्तम सेठ :

मिथ्यात्व आदिक भाव की, की जीव ने चिरभावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर, की कभी न प्रभावना।।९०।।

अहो! आचार्य भगवान कहते हैं कि आत्मस्वरूप के सन्मुख होकर शुद्ध रत्नत्रय की भावना जीव ने पहले कभी नहीं की है। अनन्तकाल से मिथ्यात्व आदिक भावों को ही जीव ने भाया है, इसलिए ही वह संसार-परिभ्रमण कर रहा है। इस जगत में वे मुनिवर ही परमसुखी हैं कि जो चैतन्यस्वरूप में मग्न होकर रत्नत्रय को भा रहे हैं। अहो! मुनिवरों के दर्शन हों, वह जीवन भी धन्य है।

(अकु-निकु आकर हर्षपूर्वक कहते हैं।)

अकु-निकु : पिताजी! पिताजी!! अपनी नगरी के उद्यान में चित्रगुप्त मुनिराज पधारे हैं। उनके दर्शन से हमें बहुत आनन्द हुआ है।

पिताजी : चलो, सभी मुनिराज के दर्शन-पूजन करने चलें।

(सब जाते हैं। पर्दा गिरता है। पुनः पर्दा ऊँचा होने पर मुनिराज दिखाई देते हैं। सब लोग अर्घ्य की थाली लेकर आते हैं और नमस्कार करके निम्नलिखित स्तुति बोलते हैं।)

चहुँगति दुख-सागर विषैं, तारन-तरन जिहाज।
रत्नत्रय निधि नग्न तन, धन्य महा मुनिराज।।

जल, गंध, अक्षत, फूल, नेवज, दीप, धूप, फलावली।
'द्यानत' सुगुरु पद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली।।

भव-योग-तन वैराग धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अराध साधु, सुपूज नित गुण जपत हैं।।

नगरसेठ : अहो! हमारे धन्य भाग्य हैं कि इस महान दशलक्षण पर्व के अवसर पर मुनिराज के दर्शन हुए। हे प्रभो! वीतरागी जैनधर्म का और रत्नत्रय की उत्कृष्ट आराधना का हमें कृपा करके उपदेश दीजिए।

(श्री मुनिराज उपदेश देते हैं, उसे सूत्रधार पर्दे के पीछे से बोलता है।)

मुनिराज : दशलक्षण महापर्व हमारे लिए आत्म-आराधना का सबसे उत्तम अवसर प्राप्त कराता है। आत्मा का पूर्णानन्दस्वभाव प्रगट करके जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए हैं, उनका उपदेश है कि हे जीवो! तुम्हारे आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वभाव भरा हुआ है। उस स्वभाव की श्रद्धा करो, उसका ज्ञान करो एवं उसमें लीन रहो। स्वरूप में लीनता होने पर चैतन्य का प्रतपन होना अर्थात् आत्मा में उग्रपने स्थिर होना ही तप है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और तप— ऐसी चतुर्विध आराधना के द्वारा चार गति का अन्त करके सिद्धपद प्राप्त होता है।

अहो जीवो! यह संसार घोर दुख से भरा हुआ है। उससे बचने के लिए अत्यंत भक्तिपूर्वक चतुर्विध आराधना करो। चार आराधनाओं में भी सबसे पहली सम्यक्त्व आराधना है, उस सम्यक्त्व की अतिशय भाव पूर्वक आराधना करो और फिर विशेष शक्ति धारण कर चारित्र धर्म अंगीकार करके जीवन सफल बनाओ।

पुरुषोत्तम सेठ : (खड़े होकर कहते हैं) हे प्रभो! आपका कल्याणकारी उपदेश सुनकर हमें अति प्रसन्नता हो रही है। हे प्रभो! चारित्रदशा अंगीकार करने की तो मेरी शक्ति नहीं है, परन्तु इस संसार के क्षणभंगुर भोगों से मेरा चित्त उदास हुआ है, इसलिए आपके समक्ष में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करता हूँ।

(अकु-निकु भी खड़े हो जाते हैं।)

अकु : पिताजी! पिताजी!! आप यह क्या कर रहे हैं?

पिताजी : बेटा! मैं व्रत ले रहा हूँ।

अकु-निकु : (हाथ जोड़कर) हम को भी व्रत दिलाओ।

पिताजी : (हास्यपूर्वक) बहुत खुशी से लो। पुत्रो! तुम भी व्रत लो।

अकु-निकु : प्रभो! हमारे पिताजी ने जो व्रत लिया है, वह हम भी अंगीकार करते हैं। हमारा यह जीवन जैनधर्म की सेवा में व्यतीत हो।

नगरसेठ : चलो, अब हम दशलक्षण पूजा करने चलें।

(सब लोग मुनिराज को नमस्कार करके नगरी में चले जाते हैं।)

तीसरा दृश्य :-

(उपर्युक्त प्रसंग को बारह वर्ष बीत गये हैं। अकलंक-निकलंक बड़े हो गये हैं। उनके विवाह की तैयारी हेतु पिताजी वस्त्राभूषण की व्यवस्था कर रहे हैं कि अकलंक-निकलंक प्रवेश करते हैं।)

निकलंक : पिताजी! यह सब क्या हो रहा है?

पिताजी : हे पुत्रो! अब तुम बड़े हो गये हो, इसलिए तुम्हारे विवाह की तैयारी चल रही है।

दोनों पुत्र : नहीं-नहीं पिताजी! हमने तो बारह वर्ष पूर्व चित्रगुप्त मुनिराज के पास में आपके साथ ही ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था।

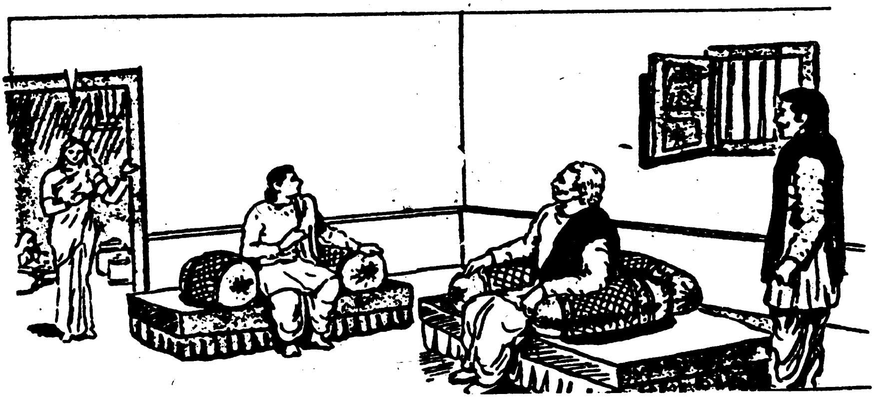

पिताजी : बेटा! वह तो तुम्हारा बचपन का खेल था।

अकलंक : नहीं पिताजी! हमने वह प्रतिज्ञा खेल समझकर नहीं, अपितु सत्यभाव से ली थी।

पिताजी : पुत्रो! भले ही तुमने सत्यभाव से प्रतिज्ञा ली हो तो भी वह केवल दशलक्षण पर्व जितनी ही थी, जो कि तभी पूर्ण भी हो गई, इसलिए अब विवाह करने में कोई अड़चन नहीं है।

निकलंक : पिताजी! हो सकता है, आपने उस समय हमारी प्रतिज्ञा मात्र दस दिन की ही समझी हो, परन्तु हमने तो हमारे मन

से पूरी जिन्दगी की प्रतिज्ञा ली थी और हम हमारी इस प्रतिज्ञा में अत्यन्त दृढ़ हैं, इसलिए आप कृपा करके हमारे विवाह की बात मत कीजिए।

पिताजी : हे पुत्रो! यदि तुम विवाह नहीं करोगे तो सारी जिन्दगी किस प्रकार बिताओगे?

अकलंक : पिताजी! हमने अपने जैनधर्म की सेवा के लिए सारा जीवन बिताने का निश्चय किया है।

निकलंक : वर्तमान में हमारा जैनधर्म अन्य धर्मों के प्रभाव से बहुत दब गया है, इसलिए उसके प्रचार की इस समय विशेष आवश्यकता है।

अकलंक : पिताजी! जब जैनशासन हमें आवाज देकर पुकार रहा है, तब हम विवाह करके, संसार के बन्धन में बंध जाएँ, क्या यह उचित है? नहीं.......नहीं।

निकलंक : हमें विश्वास है कि जैनधर्म के एक परम भक्त होने के नाते आप हमारी बात सुनकर प्रसन्न होंगे और जैनधर्म की सेवा में हमारा जीवन बीते– इसकी हमें सहर्ष आज्ञा प्रदान करेंगे। इतना ही नहीं, जैनधर्म के खातिर हमें अपने प्राणों का बलिदान करने का भी मौका मिले तो भी हंसते-हंसते हम अपने प्राणों का बलिदान देकर भी जैनधर्म की विजय-पताका जगत में फहरायेंगे।

(पर्दे के पीछे से तालियों की गड़गड़ाहट।)

पिताजी : शाबाश बच्चो! शाबाश!! जैनधर्म के प्रति तुम्हारी ऐसी महान भक्ति देखकर अब मुझसे तुमको रोका नहीं जाता। तुम्हारी इस उत्तम भावना में मेरी भी अनुमोदना है।

अकलंक : पिताजी! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा यह जीवन आत्मा के कल्याण के लिए व्यतीत हो, हम अपना आत्महित साधें और जैनधर्म की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पित कर दें।

पिताजी : (प्रसन्नता से) जाओ, पुत्रो! जाओ, आत्मा का

कल्याण साधो और जैनधर्म की महान प्रभावना करके जिन-शासन की शोभा बढ़ाओ।

(नमस्कार करके दोनों पुत्र जाते हैं। पर्दा गिरता है और फिर उठता है।)

(अकलंक शास्त्र-स्वाध्याय कर रहे हैं, वहाँ निकलंक आकर नमस्कार करते हैं।)

अकलंक : मैं 'परमात्म-प्रकाश' का स्वाध्याय कर रहा हूँ।

निकलंक : वाह, परमात्मा का स्वरूप समझने के लिए और भेदज्ञान की भावना के लिए यह बहुत ही सुन्दर शास्त्र है। हे भाई! मुझे भी इसमें से कुछ सुनाओ।

अकलंक : सुनो! इस शास्त्र के अन्त में सम्पूर्ण शास्त्र के साररूप ऐसी भावना करने को कहा है कि मैं सहज शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव एक ही हूँ, निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निज निरंजन शुद्धात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप निश्चय रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप आनंदानुभूतिमात्र *स्वसंवेदनज्ञान से गम्य हूँ, अन्य उपायों से गम्य नही हूँ। मैं सर्व विभाव* परिणामों से रहित शून्य हूँ, ऐसा— तीन लोक, तीन काल में मन-वचन-काय के द्वारा, कृत-कारित-अनुमोदना के द्वारा शुद्ध निश्चय से ऐसा मैं आत्माराम हूँ तथा सभी जीव ऐसे हैं— ऐसी निरंतर भावना करनी चाहिये।

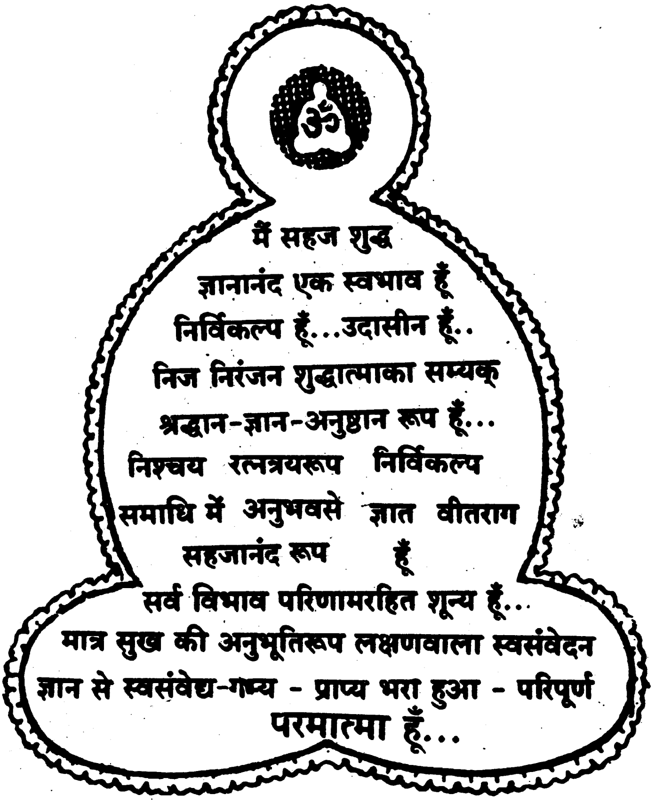

निकलंक : अहो! ऐसी परमात्म-भावना में लीन संतों को कितना आनन्द आता होगा।

अकलंक : अहा, उसकी क्या बात! जब सम्यग्दर्शन का आनन्द भी सिद्ध भगवान जैसा अपूर्व है, जिसे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की उपमा नहीं दी जा सकती, तो फिर मुनिदशा के आनन्द की क्या बात?

निकलंक : भाई! बलिहारी है अपने जैनधर्म की, उसके सेवन से ऐसे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है।

अकलंक : हाँ भाई! बात तो ऐसी ही है। वास्तव में एकमात्र जैन-शासन ही इस जगत के जीवों को शरणभूत है, लेकिन.....

निकलंक : कहो न भाई! बोलते-बोलते कैसे रुक गये और किसकी चिंता में पड़ गये?

अकलंक : भाई! क्या कहूँ अन्य चिंता तो हमें क्या हो? जीवन में केवल एक ही चिंता है कि जैन-शासन का जन-जन में प्रचार किस प्रकार हो? जगत्-कल्याणकारी जैन-शासन की वर्तमान हालत मुझसे नहीं देखी जाती। इस समय भारत में जगह-जगह एकांत मत का जोर चल रहा है, जैनधर्म तो भाग्य से ही कहीं दिखाई देता है, इसलिए इस समय तो जैनधर्म के प्रचार की ही खास चिंता है।

निकलंक : हाँ भाई! मुझे भी जैनधर्म के प्रचार की बहुत ही भावना होती है, अत: आप कोई ऐसा उपाय सोचो कि जिससे भारतवर्ष में जैनधर्म का महान प्रभाव फैल जाए।

अकलंक : हे भाई! मुझे एक युक्ति सूझी है और फिर पिताजी ने भी जैन-शासन के लिए जीवन-बलिदान की आज्ञा दे ही दी है, इसलिए अब अपना रास्ता बहुत ही सुगम होगा।

निकलंक : कहो भाई! कहो, वह युक्ति कौन-सी है?

अकलंक : सुनो भाई! इस समय भारतभर में एकांत मत का बहुत बोलबाला है, इसलिए पहले तो हमें एकांत मत के शास्त्रों का

गहन अध्ययन करना पड़ेगा, उसके बाद ही हम उनकी भूल खोज कर उसका खंडन कर सकेंगे।

निकलंक : परन्तु भाई! ये एकांतमत वाले लोग हम जैनों को कुछ अध्ययन आदि नहीं कराते हैं।

अकलंक : इसका भी उपाय मैंने सोच लिया है। सुनो!

(कान में कुछ कहता है।)

निकलंक : वाह, बहुत ही सुन्दर उपाय है, धन्य है भैया आपकी बुद्धि को।

अकलंक : अब अपने कार्य की सिद्धि के लिए हमें जल्दी ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए।

निकलंक : हाँ, परन्तु जाने से पहले हमें यह बात पिताजी को बता देनी चाहिए, अन्यथा वे हमें ढूंढने लगेंगे।

अकलंक : तुम्हारी बात ठीक है। चलो, हम पिताजी की आज्ञा लेने चलते हैं।

(पिताजी प्रवेश करते हैं।)

निकलंक : लो, पिताजी स्वयं आ पहुँचे।

(दोनों भाई हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं।)

अकलंक : पिताजी जैनशासन की सेवा के लिए हम देशान्तर जा रहे हैं। आप हमारी कुछ भी चिंता नहीं करना। हम अपने सर्वस्व-बुद्धि, शक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तन, मन, धन, वचनादि से जैन-शासन की सेवा करेंगे और जैनधर्म के झंडे को विश्व के गगन में फहरायेंगे। जिनेन्द्र भगवान हमारे जीवन में साथीदार हैं।

पिताजी : धन्य है पुत्रो! तुम्हारी भावना को। जाओ, खुशी से जाओ। तुम अपनी योजना में सफल होओ और जैनधर्म का जय-

जयकार कराओ, ऐसा मेरा आशीर्वाद है। तुम्हारी शक्ति के ऊपर मुझे विश्वास है और तुम जरूर अपने कार्य में सफल होओगे। जिनेन्द्र भगवान तुम्हारा कल्याण करें।

(दोनों पुत्र नमस्कार करके जाते हैं और सभी एकसाथ बोलते हैं।)

सब : बोलिए, जैनधर्म की जय!

चौथा दृश्य:–

(एकान्त मत के विद्यापीठ का दृश्य है। घंटी बजते ही आठ-दस बालक पुस्तक लेकर आते हैं। थोड़ी देर में उनके गुरु भी आ जाते हैं। बालक खड़े होकर विनय करते हैं। सारे बालक एक साथ बोलते हैं।)

देवं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।

(तीन बार बोलते हैं।)

गुरु : हे शिष्यो! अपना धर्म श्रेष्ठ है। उसकी उपासना से जीव मोक्ष प्राप्त करता है। इस जगत में सब अनित्य है। सभी वस्तुयें सर्वथा अनित्य होने पर भी कितने ही लोग भ्रम से वस्तु को नित्य मानते हैं, परन्तु अपना धर्म एकान्त क्षणिकवादी है। सब ही क्षणिक है— ऐसा समझकर उससे विरक्त होना, यही अपने धर्म का उपदेश है।

(अकलंक-निकलंक शिष्यों के वेश में आते हैं। आकर गुरु को नमस्कार करते हैं।)

गुरु : आओ बालाको! कहाँ से आए हो?

अकलंक : महाराज! हम सौराष्ट्र देश से आ रहे हैं।

गुरु : बालको! इतनी दूर से यहाँ किसलिए आए हो?

निकलंक : स्वामीजी! हमने इस विद्यापीठ की बहुत प्रशंसा सुनी है, इसलिए इस विद्यालय में रहकर आपके पास आपके धर्म का अभ्यास करने आये हैं। अतः आप हमें अपने इस विद्यालय में प्रवेश दीजिए और आपके धर्म का अभ्यास कराइये।

गुरु : बालको! तुम जिनधर्मी तो नहीं हो ना? क्योंकि जैनों को हम इस विद्यालय में पढ़ाते नहीं हैं।

अकलंक : नहीं, महाराज! हम तो आपके धर्म का अभ्यास करने आये हैं।

गुरु : अच्छा! बहुत अच्छा!! परन्तु तुम हमारे धर्म के सूक्ष्म सिद्धांतों समझ तो सकोगे?

निकलंक : अवश्य महाराज! ये मेरे बड़े भाई तो महा बुद्धिमान और एकपाठी हैं— केवल एक बार सुनने से इन्हें सब याद रह जाता है।

अकलंक : और मेरे छोटे भाई भी बहुत बुद्धिमान हैं। मात्र दो बार सुनने से इनको सब याद रह जाता है।

गुरु : ठीक है, खुशी से यहाँ रहकर पढ़ो; परन्तु याद रखना कि कभी भी जैनधर्म का पक्ष करोगे तो फांसी ही दी जायेगी— ऐसा इस विद्यालय का नियम है।

अकलंक : ठीक है गुरुजी, हम आपके नियमों का पालन करेंगे।

गुरु : जाओ कक्षा में बैठो।

(अकलंक-निकलंक कक्षा में जाकर बैठते हैं और सबके साथ बोलते हैं।)

देवं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।

(अकलंक और निकलंक विद्यापीठ में रहकर पूरी लगन और निष्ठा से अध्ययन में जुट गये, अल्पसमय में ही उन्होंने सभी शास्त्रों

का, संस्कृत भाषा का गहरा अध्ययन कर लिया। अब उनकी शिक्षा पूर्णता की ओर ही थी कि एकदिन....।)

गुरु : सुनो विद्यार्थियो! आज मैं तुमको जैनधर्म का प्रकरण समझाता हूँ और उसमें क्या भूल है— यह बतलाता हूँ। अपने धर्म के अनुसार इस जगत में सब सर्वथा क्षणभंगुर अनित्य ही है, लेकिन जैन लोग वस्तु को नित्य मानते हैं और फिर उसे अनित्य भी मानते हैं। देखो, उनके इस शास्त्र में लिखा है कि 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' अर्थात् जीव है, जीव नहीं है।

एक विद्यार्थी : ऐसा कहने का क्या कारण है?

गुरु : कारण दूसरा क्या होगा? बस एक अज्ञान।

दूसरा विद्यार्थी : परन्तु गुरुजी! 'जीव है' ऐसा कहते हैं और फिर साथ में ही 'जीव नहीं है', ऐसा भी कहते हैं, ऐसी सीधी-सादी बड़ी भूल जैन कैसे कर सकते हैं? जैन तो बहुत बुद्धिवाले माने जाते हैं। तब 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' ऐसा कहने में उनकी कोई अपेक्षा तो होगी, केवल हमें भ्रम में डालने के लिए तो ऐसा नहीं कहा है।

तीसरा विद्यार्थी : महाराज! 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' का अर्थ क्या है?

गुरु : (क्रोधित होकर) 'जीवः अस्ति' अर्थात् जीव है और 'जीवः नास्ति' अर्थात् जीव नहीं है।

चौथा विद्यार्थी : 'जीव है और जीव नहीं है।' इसका मतलब क्या?

गुरु : (झुंझलाकर) माथा पचा दिया। इस समय मेरा सिर दुख रहा है, कल समझाऊँगा

(गुरु सिर में हाथ देकर कक्षा में से चले जाते हैं। विद्यार्थी भी एक-एक करके चले जाते हैं। अन्त में अकलंक और निकलंक बच जाते हैं।)

अकलंक : भाई! गुरु किसलिए भाग गये, इसका तुझे पता है?

निकलंक : हाँ, पता है, उनका सिर दुख रहा था।

अकलंक : नहीं, नहीं। सिर दुखने का तो बहाना था। वास्तव में तो जैन सिद्धांत का अर्थ वे स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे, इसलिए झुंझलाकर चले गये। यहाँ आओ, मैं तुमको उनकी भूल समझाता हूँ

(दोनों गुरु की मेज के पास जाकर पुस्तक देखते हैं)

अकलंक : इसे पढ़ो, यह क्या लिखा है?

निकलंक : 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति'। भाई! इसमें 'स्यात्' शब्द तो छूट ही गया है।

अकलंक : शाबाश! यहाँ 'स्यात्' शब्द न होने के कारण ही गुरु उलझन में पड़ गये और इसी वजह से वे सिरदर्द का बहाना बनाकर चले गये हैं।

निकलंक : तो भाई आओ! हम यहाँ 'स्यात्' शब्द लिखकर उनका सिरदर्द मिटा देते हैं।

अकलंक : हाँ चलो, ऐसा ही करते हैं, परन्तु यह बात बहुत ही गुप्त रखना, यदि हम पकड़े गये तो जान का खतरा है।

(पुस्तक में 'स्यात्' शब्द लिखकर चुपचाप चले जाते हैं। थोड़ी ही देर बाद पाठशाला की घंटी बजती है। विद्यार्थी आते हैं। पीछे से गुरु आते हैं। विद्यार्थी उन्हें सम्मान देते हुए खड़े हो जाते हैं।)

(फिर सभी इकट्ठे होकर अपना पाठ दोहराते हैं।)

गुरु : शिष्यो! आज हमको कल के जैनधर्म का शेष प्रकरण सीखना है।

अकलंक : गुरुजी! आज आपका सिर तो नहीं दुख रहा है न?

गुरु : नहीं, आज तो ठीक है। (गुरु पुस्तक खोलकर पढ़ते हैं) 'जीव: अस्ति, जीव: नास्ति।' (चौंककर पुन: पढ़ते हैं।) अरे! इसमें तो 'स्यात्' शब्द लिखा है:— 'जीव: स्यात् अस्ति, जीव: स्यात् नास्ति।'

एक शिष्य : 'स्यात्' का अर्थ क्या होता है? गुरुजी!

गुरु : 'जीव: स्यात् अस्ति' अर्थात् जीव किसी अपेक्षा से अस्तिरूप है और 'जीव: स्यात् नास्ति' अर्थात् जीव किसी अपेक्षा से नास्तिरूप है।

दूसरा शिष्य : वाह, आज तो अच्छी तरह अर्थ समझ में आ गया।

गुरु : सही बात है। कल 'स्यात्' शब्द रह जाता था, इसलिए अर्थ में गड़बड़ होती थी, परन्तु अब तो 'स्यात्' शब्द आ जाने से अर्थ समझ में आता है। जैन कहते हैं कि 'जीव स्यात् नित्य है और

स्यात् अनित्य है' —इस प्रकार वे एक ही वस्तु को नित्य भी और अनित्य भी कहते हैं। सभी की समझ में आया?

शिष्य : (सिर हिलाकर) जी हाँ, जी हाँ।

(घंटी बजती है। सारे शिष्य जाते हैं। गुरु महाराज अकेले विचारमग्न बैठे हैं।)

गुरु : अरे, गजब हो गया। इस पुस्तक में 'स्यात्' शब्द आया कहाँ से? (पुस्तक के ऊपर हाथ पटककर) अवश्य किसी जैन का ही यह काम है। मैं भी जिस शब्द को नहीं समझ सका और जिसका मेल मिलाने के लिए मेहनत करते-करते मेरा सिर दुख गया और फिर भी मैं उसकी सन्धि नहीं मिला सका, वह सन्धि मात्र एक 'स्यात्' शब्द लिखकर किसी जैन विद्यार्थी ने मिला दी है। अवश्य यह कोई अत्यंत बुद्धिमान है। इसके सिवाय दूसरे का यह काम हो ही नहीं सकता, अवश्य इस विद्यालय में कपट से हमारा वेश धारण करके कोई जैन घुस आया है। खैर, कोई परेशानी की बात नहीं है, मैं किसी भी उपाय से पकड़कर उसे फांसी पर चढाऊँगा।

(जोर से) सिपाही! ओ सिपाही!!

सिपाही : जी साहब!

गुरु : जाओ! तुरन्त इसी समय इन्स्पेक्टर को बुलाकर लाओ।

(सिपाही जाता है, थोड़ी ही देर में इंस्पेक्टर आता है।)

इंस्पेक्टर : नमस्ते महाराज! फरमाइये, इस सेवक को क्या आज्ञा है?

गुरु : देखो! अपने विद्यालय में चोरी-छिपे कोई जैन घुस आया है, उसे हमें किसी भी उपाय से पकड़ना है।

इंस्पेक्टर : परन्तु स्वामीजी, हम उसे कैसे पहचानेंगे?

गुरु : मैंने उसके लिए एक-दो युक्तियाँ सोच रखी हैं और तुम भी उसे पकड़ने की युक्ति में रहना।

इंस्पेक्टर : जैसी आज्ञा!

(इंस्पेक्टर जाता है। दृश्य बदलता है। विद्यार्थी कक्षा में पढ़ रहे हैं। गुरुजी वेगपूर्वक आकर क्रोध से कहते हैं।)

गुरु : चुप रहो! सुनो!! कल इस पुस्तक में जैनधर्म के प्रकरण में 'स्यात्' शब्द नहीं था और उसे बाद में किसी ने लिखा है। जल्दी बताओ कि यह शब्द किसने लिखा है?

(सारे विद्यार्थी भय से गुपचुप बन जाते हैं।)

गुरु : *(उग्रता से) बोलो! तुम में से कोई बोलता क्यों नहीं है?*

विद्यार्थी : (सारे एक साथ) हमें कुछ मालूम नहीं है।

गुरु : यह शब्द तुम में से ही किसी ने लिखा है। जिसने भी लिखा हो, वह सीधे तरीके से मान ले, अन्यथा मैं कठोर व्यवहार करूँगा।

(कोई बोलता नहीं है, थोड़ी देर में पहले विद्यार्थी की ओर देखकर गुरुजी पूछते हैं।)

गुरु : बोल, तूने यह लिखा है?

विद्यार्थी : जी नहीं, मैंने नहीं लिखा और किसने लिखा है? यह भी मैं नहीं जानता।

गुरु : (दूसरे विद्यार्थी से) बोल, तूने लिखा है?

विद्यार्थी : जी नहीं।

(इसी प्रकार शेष सभी विद्यार्थियों से पूछते हैं, सारे विद्यार्थी 'जी नहीं' ऐसा कहते हैं। अंत में अकलंक से पूछते हैं)

गुरु : बोल अकलंक! तूने यह लिखा है?

अकलंक : जी नहीं, मैंने नहीं लिखा है और किसने लिखा है? यह भी मैं नहीं जानता।

गुरु : (क्रोधित होकर) मैं जानता हूँ कि कोई जैन विद्यार्थी यहाँ गुप्तरूप से घुस आया है, परन्तु मैं उसको पकड़कर ही रहूँगा। मंत्रीजी! यहाँ आओ।

मंत्री : जी महाराज!

गुरु : जाओ, एक जिनप्रतिमा मंगवाओ और फिर उसे रास्ते के बीच में रखकर प्रत्येक विद्यार्थी को एक-एक करके मूर्ति को लांघने के लिए कहो। जो विद्यार्थी उस मूर्ति को न उलंघे, उसे मेरे पास पकड़कर लाओ; क्योंकि जो सच्चा जैन होगा, वह जिनप्रतिमा को कभी नहीं लांघेगा।

मंत्री : जैसी आज्ञा!

(मंत्री अन्दर जाकर थोडी देर में लौट आता है।)

मंत्री : महाराज! आपकी आज्ञानुसार मूर्ति रख दी है। अब एक-एक करके विद्यार्थियों को भेजिए और आप स्वयं भी देखने के लिए चलिए।

गुरु : हाँ, चलिए। विद्यार्थियो! तुम भी एक-एक करके अन्दर आओ ओर जिनप्रतिमा को लांघकर आगे निकलो।

(गुरु अन्दर जाते हैं। पीछे से एक के बाद एक शिष्य जाता है। अंत में अकलंक और निकलंक दो ही शेष रहते हैं।)

निकलंक : (करुण होकर) भाई! अपने ऊपर बड़ा भारी धर्मसंकट आ पड़ा है। अब हम क्या करें? जिनेन्द्र भगवान अपने इष्टदेव हैं। उनकी प्रतिमा का उल्लंघन अपने से कैसे हो सकता है? प्राण जाय तो भी ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अभी इसी वक्त हम इन गुरु के हाथों पकड़े जाकर मृत्यु प्राप्त करेंगे और जैन-शासन की सेवा की अपनी भावना अधूरी ही रह जायेगी। और फिर इस समय विशेष विचार का समय भी नहीं है, क्योंकि अब तुरन्त मूर्ति को लांघने की हमारी बारी आ रही है।

अकलंक : (निकलंक के ऊपर हाथ रखकर) भाई! प्राण जाए तो भी अपने इष्टदेव जिनेन्द्र भगवान की अविनय नहीं करनी चाहिये— यह तुम्हारी भावना देखकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। तुम अपनी इस भावना में अडिग रहना। जिनेन्द्र भगवान अपने जीवनसाथी हैं।

निकलंक : परन्तु भाई! मुझे चिंता हो रही है कि अब अपना क्या होगा? आप उत्पादादिक बुद्धिवाले हैं। अतः इस समय कोई युक्ति खोजकर निकालिए।

अकलंक : (थोडी देर विचार करके) भाई! तुम निश्चिंत रहो, मुझे उपाय सूझ गया है। (गले में से जनेऊ निकालकर) देखो, यह जनेऊ! जब अपनी बारी आयेगी तब इस मूर्ति पर यह जनेऊ डालकर उसे परिग्रहवाली कर लेना अर्थात् यह मूर्ति जैनमूर्ति नहीं रहेगी और फिर हम इसे निशंकपने लाँघ कर निकल जायेंगे।

निकलंक : बहुत अच्छा भाई! धन्य है आपकी बुद्धि को।

(अन्दर से आवाज आती है।)

अकलंक-निकलंक! ओ अकलंक-निकलंक!!

अकलंक : चलो भाई! अपनी बारी आ गई। (दोनों अन्दर जाते हैं। थोड़ी देर में अन्दर का पर्दा खुलता है। वहाँ एक मूर्ति या चित्र पर जनेऊ पड़ी हुई दिखाई देती है। तुरन्त पर्दा गिरता है। थोड़ी देर में पर्दा खुलता है और गुरु तथा मंत्री चिंतामग्न बैठे हुए दिखाई देते हैं।)

मंत्री : महाराज! एक-एक विद्यार्थी मूर्ति को लांघकर चला गया है, इसलिए इनमें कोई जैन हो— ऐसा नहीं लगता।

गुरु : नहीं, मंत्रीजी! सम्भव है कि पकड़े जाने के डर से वह जैन विद्यार्थी मूर्ति को लांघ गया हो, इसलिए आज रात में एक नई परीक्षा करना चाहता हूँ और उसमें जो जैन होगा वह अवश्य पकड़ा जायेगा।

मंत्री : ऐसी वह कौन-सी युक्ति है गुरुजी!

गुरु : सुनिए मंत्रीजी! मनुष्य जिस समय नींद में से घबराकर जागता है, उस समय उसके मुख में से सहज ही अपने इष्टदेव का नाम निकलता है, इसलिए मैंने एक ऐसी योजना बनाई है कि आज रात्रि में प्रत्येक विद्यार्थी के कमरे के पास गुप्त रूप से एक-एक चौकीदार बैठा दिया जाए और जब सारे विद्यार्थी नींद में हों, तब अचानक भयंकर कोलाहल किया जाए। ऐसा होने पर सारे विद्यार्थी घबराकर जाग उठेंगे और अपने इष्टदेव का नाम बोलने लगेंगे। उनमें हमारे धर्मानुयायी विद्यार्थी तो हमारे भगवान का नाम बोलेंगे, परन्तु जो विद्यार्थी जैन होगा, वह हमारे भगवान का नाम नहीं बोलेगा, अपितु उसके इष्टदेव अरहंत का नाम बोलेगा और इस तरह वह पकड़ में आ जायेगा, अतः इस योजना की सारी व्यवस्था आप गुप्त रूप से शीघ्र ही कर लीजिए।

मंत्री : जैसी आज्ञा महाराज! (मंत्री जाता है। पर्दा गिरता है।)

पाँचवां दृश्य:-

(दो खाटें बिछी हुई हैं। अकलंक-निकलंक बैठे हैं और बातचीत कर रहे हैं।)

निकलंक : भाई! हमारी युक्ति तो सही-सही पूरी हो गई है, परन्तु अब हमें बहुत सावधानी से रहना पड़ेगा, क्योंकि गुरु को जैनों की गन्ध आ गई है, इसलिए उसे पकड़ने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देंगे।

अकलंक : भाई! अभी जिन-शासन का पुण्य तप रहा है, जिनेश्वरदेव के प्रताप से हमें कुछ भी बाधा नहीं आयेगी। चलो, हम अपने-अपने मन में जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करके सो जाएँ।

(दोनों हाथ जोड़कर थोड़ी देर स्तुति करते हैं, बाद में सो जाते है, अंधेरा होता है। काले वेश में एक गुप्तचर आकर चुपचाप इनके कमरे के पास बैठ जाता है। थोड़ी देर में अचानक एक जोरदार धमाके का कोलाहल होता है। पर्दे में से विद्यार्थियों का शोर सुनाई देता है। अकलंक-निकलंक भी चौंककर जाग जाते हैं ''अरहंत-अरहंत'' बोलने लगते हैं)

निकलंक : क्या हुआ भाई! एकाएक यह क्या हुआ?

गुप्तचर : दुष्टो! तुमने अरहंत का नाम बोला, इससे मैं समझ गया हूँ कि तुम जैन हो। चलो गुरु के पास। अभी वे तुम्हारी खबर लेंगे।

(दोनों को पकड़कर ले जाते हैं। गुरु बैठे हैं। वहां गुप्तचर अकलंक-निकलंक को लेकर आते हैं)

गुप्तचर : महाराज! जिस समय कोलाहल हुआ था, उस समय ये दोनों विद्यार्थी अरहंत का नाम ले रहे थे, इसलिए मैं इनको आपके पास ले आया हूँ।

गुरु : (हंसकर) वाह रे, अकलंक-निकलंक! तुम पढ़ने में तो बहुत चतुर हो। सच बताओ तुम कौन हो? तुम जैन हो?

अकलंक : महाराज, आपकी बात सत्य है। अब जब भेद खुल ही गया है तो हमें भी कुछ छिपाना नहीं है। हम जैन ही हैं और अरहंतदेव के परम भक्त हैं।

गुरु : देखो बालको! जो हो गया, सो हो गया। अभी भी तुमको बचने का एक उपाय बताता हूँ। यदि तुम जैनधर्म छोड़कर हमारा धर्म अंगीकार करने तैयार हो जाओ तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, अन्यथा तुमको मृत्यु-दण्ड की सजा दूँगा।

निकलंक : देह जाए तो भले ही जाए, परन्तु हम अपने प्रिय जैनधर्म को कभी भी नहीं छोड़ेंगे। जैनधर्म हमें प्राणों से प्यारा है। "सिर जावे तो जावे मेरा जैनधर्म नहीं जावे" विश्व के किसी भी भय से डरकर हम अपने जैनधर्म को छोड़नेवाले नहीं हैं। जैनधर्म की खातिर ये प्राण जाएँ या रहें, इसकी हमें चिंता नहीं है।

गुरु : ठीक है। जाओ गुप्तचर! इस समय तो इन दोनों को जेल में डाल दो और सारी रात वहाँ कठोर पहरा रखना। प्रातःकाल होते ही राजा की आज्ञा लेकर इनको फांसी पर लटका देंगे।

(गुप्तचर दोनों को ले जाता है और जेल में डाल देता है। जेल के अंधेरे में दोनों भाई बातचीत कर रहे हैं, बाहर पहरेदार खड़े हैं।)

निकलंक : भैया! हम बहुत कठिन परिस्थिति में पड़ गये हैं। अब इसमें से निकलना बहुत कठिन है।

अकलंक : धैर्य रखो भाई, धैर्य रखो! जिनेन्द्र भगवान अपने जीवन में सदा सहयोगी हैं। जैन-शासन का प्रभाव अभी तप रहा है, इसलिए अवश्य ही कुदरत हमारी मदद करेगी।

निकलंक : अहो भैया! ऐसे बड़े संकट के प्रसंग में भी आप ऐसा महान धैर्य रख सकते हो। यह महा आश्चर्य की बात है।

अकलंक : भाई! जैन-शासन की कोई ऐसी अचिन्त्य महिमा है कि सुख में हो या दुःख में हो वह सभी प्रसंगों में जीव को शरणभूत है।

निकलंक : अहो! जैन-शासन के लिए हमने अपना जीवन समर्पित किया, जैन-शासन के खातिर हम घरबार छोड़कर यहाँ आए, जैन-शासन के लिए ही जान जोखिम में डालकर यहाँ विद्याध्ययन किया और अब जैन-शासन के प्रचार की हमारी भावना क्या अधूरी ही रह जाएगी?

अकलंक : भाई! इस समय यह बात और यह दुःख भूल जाओ। अब तो बस अंतर की आराधना करो और ऐसी समाधि की भावना भाओ कि कदाचित् इस उपद्रव के प्रसंग में अपनी मृत्यु हो जाए तो हमारे अन्न-पानी का त्याग है और यदि इस संकट से छूट गये तो हमारा सारा जीवन जैनधर्म के लिए अर्पित है।

निकलंक : हाँ भाई! आपकी बात उत्तम है। मैं भी ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जबतक इस संकट से नहीं उबरेंगे, तबतक आहार-पानी का त्याग है और यदि इससे छूट गये तो हमारा सम्पूर्ण जीवन जैनधर्म की सेवा हेतु समर्पित है।

पहला पहरेदार : अरे! ये राजकुमार जैसे धर्म के प्रेमी दोनों बालक कितने प्रिय हैं— ऐसे निर्दोष बालकों को प्रातःकाल प्राण-दण्ड दिया जाएगा। अरे.....कुदरत कैसी है!

दूसरा पहरेदार : भैया! हमें भी बहुत दुख हो रहा है, लेकिन हम इसमें क्या कर सकते हैं।

निकलंक : भैया! मुझे एक स्तुति बोलने की इच्छा हो रही है।

अकलंक : बोलो भाई! खुशी से बोलो! मैं भी तुम्हारे साथ बोलूँगा।

(दोनों बहुत ही वैराग्य भाव से स्तुति बोलते हैं।)

मेरा धर्मसेवा का भाव, प्रभुजी पूरा करना आज।
मेरा भव का बन्धन तोड़, आशा पूरी करना नाथ।।टेक।।

शासनसेवा की प्रीति जागी, भव-उद्धारक वीणा बाजी।
फरके जैनधर्म का ध्वज, अवसर ऐसा देना नाथ।।१।।

सब मिथ्यात्वी धर्म तजूँ मैं, अनेकान्त के पाठ पढ़ूँ मैं।
गाजे जैनधर्म का नाद, आशा पूरी करना नाथ।।२।।

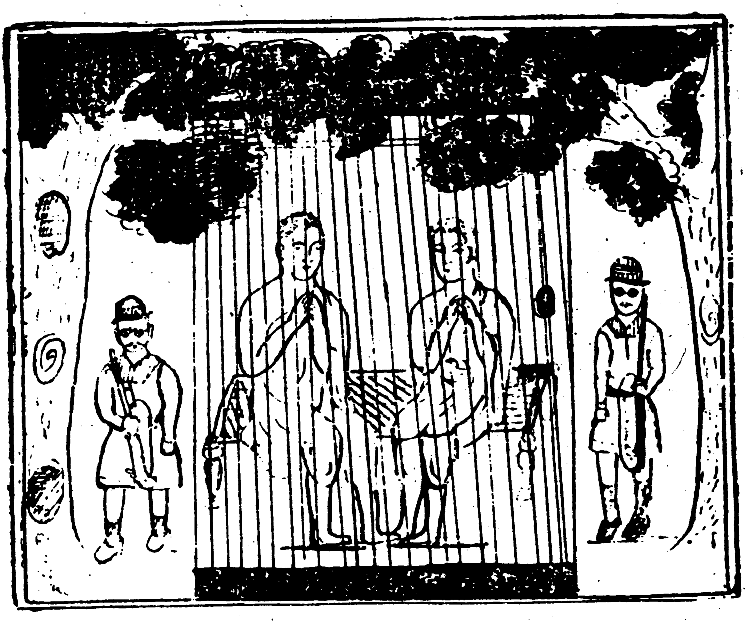

अकलंक : भाई! धर्मसेवा की तुम्हारी भावना सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। अब मुझे भी एक भावना हो रही है, जो कि दिन-रात भाने जैसी है, सुनो!

दिन-रात मेरे स्वामी! मैं भावना यह भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ।।टेक।।

शत्रु अगर कोई हों, संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धरके, सबसे क्षमा कराऊँ।।१।।

त्यागूँ आहार-पानी, औषधि विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में धारूँ।।२।।

जागे नहीं कषायें, नहिं वेदना सताये।
तुमसे ही लौं लगी हो, दुर्ध्यान को हटाऊँ।।३।।

आतम स्वरूप चिंतन, आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ।।४।।

धर्मात्मा निकट हों, चर्चा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।५।।

जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को भगाऊँ।।६।।

भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमिरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।।७।।

सम्यक्त्व का हो पालन, हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ।।८।।

(यह गायन सुनते-सुनते पहरेदार झूमने लगते हैं और फिर गहरी निद्रा में सो जाते हैं, नसकोरा बोलता है।)

निकलंक : भाई! चलो दुःख में परम शरणभूत और आनन्द निधान अपने चैतन्य स्वरूप का चिंतन करते हैं।

अकलंक : हाँ चलो, उत्तम जीवन में यही वास्तव में करने योग्य है।

(दोनों भाई आत्मस्वरूप का चिंतन करते हैं। बाहर भी पूर्ण शान्ति है। पहरेदारों के खर्राटों की आवाज आ रही है।)

अकलंक : (निकलंक का हाथ पकड़कर) निकु! निकु! चलो, उठो! जल्दी करो! देखो! ये पहरेदार गहरी नींद में सो रहे हैं। हम इस जेल को लांघकर जल्दी ही निकल चलते हैं। (पहले अकलंक जेल से निकल जाते हैं। फिर बाद में निकलंक को हाथ का सहारा देकर बाहर निकालते हैं। एक दूसरे के साथ हाथ मिलाकर दोनों भाई तेजी से भाग रहे हैं। इतने में पर्दा गिरता है, दृश्य बदलता है।)

गुरु : पहरेदारो! जाओ अकलंक-निकलंक को जेल से लेकर यहाँ आओ।

पहरेदार : जैसी आज्ञा!

(पहरेदार जाते हैं और हांफते-हांफते लौटकर आते हैं।)

पहरेदार : महाराज! महाराज! वे दोनों तो जेल से भाग गये।

गुरु : अरे! क्या कह रहे हो? क्या वे भाग गये? गजब हो गया। सिपाहियो! जाओ! उन दोनों को तुरंत पकड़ो! यदि वे पकड़ में नहीं आये तो हमारे धर्म को भारी नुकसान पहुचायेंगे। मैं जानता हूँ कि केवल अकलंक में ही ऐसी ताकत है कि वह बड़े-बड़े सैकड़ों विद्वानों को हरा सकता है। इसलिए चारों ओर सैनिकों को दौड़ाओ और कैसे भी उनको पकड़ो। यदि जीवित पकड़ में न आयें तो प्रहार कर देना। जाओ! जल्दी जाओ!

(अनेक सैनिक 'धम-धम' करते हुए जाते हैं। पर्दा गिरता है। दृश्य बदलता है। यहाँ अकलंक-निकलंक दौड़ते हुए भाग रहे हैं।)

अकलंक : चलो निकलंक! जल्दी चलो! जितना हो सके उतना अधिक दूर निकल जाएँ।

निकलंक : भाई! जैनधर्म का प्रभाव है कि हम जीवित बच गये।

(पर्दे के पीछे से 'धम-धम' की आवाज आती है।)

अकलंक : भाई! वो दूर देखो सैनिक हमें पकड़ने के लिए आ रहे हैं। वे खूब उत्तेजित होंगे और क्रोधित होंगे। इसलिए हमें छोड़ेंगे नहीं। इस समय बचना मुश्किल है।

निकलंक : भैया! ऐसा करो आप जल्दी भाग जाओ और मैं यहाँ खड़ा-खड़ा उन्हें रोके रखूँगा।

अकलंक : अरे भाई! क्या ऐसे संकट में तुझे छोड़कर मैं अकेला भाग जाऊँ।

निकलंक : भैया! मेरी अपेक्षा आप अधिक योग्य हो। जैन-शासन की सेवा मेरी अपेक्षा अधिक कर सकोगे। आप अपने (योग्य) जीवन के लिए नहीं, परन्तु जैन-शासन की सेवा के लिए जल्दी यहाँ से चले जाओ और मेरी चिंता छोड़ो इस समय एक-एक समय कीमती है।

('धम-धम' और 'पकड़ो-पकड़ो' की आवाजें आ रही हैं।)

अकलंक : परन्तु भाई! तू मेरा छोटा भाई है। तुझे मृत्यु के मुँह में छोड़कर अकेले मेरे पैर आगे कैसे बढ़ेंगे?

निकलंक : भैया! मैं आपके चरणों में गिरकर फिर से प्रार्थना करता हूँ कि इस समय आप मेरे जीवन की नहीं, परन्तु जैन-शासन की रक्षा का विचार करो। जैन-शासन की रक्षा के लिए कदाचित् मेरे जीवन का बलिदान होगा तो मैं अपने जीवन को सफल मानूँगा। भाई! मेरा और तुम्हारा दोनों का जीवन जैन-शासन के लिए ही अर्पित किया हुआ है, इसलिए एक पल की भी देरी किये बिना जिनेन्द्र भगवान का नाम लेकर शीघ्रता से भाग जाओ। देखो! दूर पहला सरोवर दिखाई देता है। वहाँ जाकर विशाल कमल के पत्ते के नीचे छिप जाओ और जीवन में जैन-शासन की विजय की ध्वजा फहराना। जाओ भाई! जल्दी जाओ !!

अकलंक : (करुण होकर) भाई! मैं नहीं जाऊँगा। तू भाग जा और मैं यहाँ खड़ा होकर सैनिकों को रोके रखूँगा।

निकलंक : (करुण होकर) भाई! भाई!! जैन-शासन के लिए अब एक शब्द भी बोले बिना, अब एक पल भी गंवाये बिना तुम जल्दी भागो। इस समय सवाल मेरे या आपके जीवन का नहीं, अपितु जैन-शासन की रक्षा का है। अब विलम्ब करोगे तो हम दोनों पकड़े जायेंगे, इसलिए जल्दी जाओ। जैन-शासन की प्रभावना जितनी आप कर सकेंगे, उतनी मैं नहीं कर सकता, इसलिए जैन-शासन की सेवा के लिए आप अपना जीवन बचाओ। जाओ! भाई, जल्दी जाओ!.

(पर्दे में से सैनिकों की आवाज आती है:— वे जा रहे हैं। पकड़ो, पकड़ो।)

अकलंक : (अत्यंत करुण शब्दों में) भाई! तू जैनधर्म का परम भक्त है। मैं मजबूर हूँ कि इस समय जैनधर्म के लिए तुझे अकेला छोड़कर मुझे जाना पड़ रहा है। भाई! जिनेन्द्र भगवान तेरा कल्याण करें।

(दोनों भाई बहुत ही स्नेहपूर्वक एक-दूसरे से मिलते हैं।)

सिपाही : पकड़ो, दोनों को पकड़ लो, नहीं पकड़ में आयें तो प्रहार करो।

निकलंक : जाओ भाई! जल्दी करो!

(अकलंक भागने लगता है। सरोवर में छिप जाता है। निकलंक के पीछे सैनिक धमाधम करते दौड़ रहे हैं। निकलंक भागता-भागता घूमकर रंगभूमि के ऊपर आता है। वहाँ पर सामने से एक धोबी आ रहा है।)

धोबी : अरे बाबा! क्यों भागते हो?

(निकलंक हाँफते हुए भागे जा रहे हैं, धोबी को कुछ भी उत्तर नहीं देते, धोबी उसके भागने का कारण जानने के लिए उसके पीछे दोड़ते हुए पुनः आवाज लगाकर उसे रोकना चाहता है, परन्तु निकलंक ने मानो कुछ सुना ही न हो...., वह तो भागता ही जा रहा है, उसके पीछे धोबी भी भागता जा रहा है।)

उसके पीछे सैनिक, 'मारो-मारो' करते आ रहे हैं।

("धड़ाक-धड़ाक" सैनिक पास में आकर दोनों पर प्रहार कर देते हैं।)

निकलंक : हा......! अरहंत......अरहंत......अ......र......

(प्राण-त्याग बलिदान)

सैनिक : चलो! अपना काम पूरा हुआ। ये दोनों जीवित पकड़ में नही आ रहे थे, इसलिए इनको यहीं ढ़ेर कर दिया। चलो! अब जल्दी यह समाचार गुरु को सुनाते हैं।

(सैनिक जाते हैं। नीरव शान्ति छा जाती है। निकलंक और उस धोबी का मृत शरीर वहाँ पड़ा हुआ है। थोड़ी देर में अकलंक धीरे-धीरे शिथिल पैरों से वहाँ आते हैं, और अचानक निकलंक के शरीर के ऊपर नजर पड़ते ही "हा निकलंक! निकलंक!! भाई! भाई!!"

ऐसा उसे पुकारते हैं। थोड़ी देर तक गंभीरता से उसकी ओर देखते रहते हैं और उसके बाद एकदम भरे हुए गले से बहुत ही वैराग्य एवं करुण भाव से बोलते हैं।)

अकलंक : अहा! जैनधर्म के लिए मेरे भाई ने हंसते-हंसते अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। अपने प्राण निकालकर इसने जैन-शासन में नये प्राण फूँक दिये। भाई! जैन-शासन के लिए किया गया तेरा बलिदान निष्फल नहीं जायेगा। अहो! तुमने प्राणों से भी अधिक प्यारे जैन-शासन को समझा। तुम्हारा ऐसा जैनधर्म का प्रेम परभव में भी तुम्हारा कल्याण करेगा और तुमको इस संसार-सागर से पार

उतारेगा। भाई! तूने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी मुझे बचाया है तो अब मैं जैनधर्म की प्रभावना का हमारा कार्य जरूर पूरा करूँगा। जिसने तेरे प्राणों का बलिदान लिया है, उस एकांत धर्म को हराकर सम्पूर्ण भारत के गांव-गांव में, घर-घर में जैनधर्म का ध्वज फहराऊँगा। जब मैं सम्पर्ण भारत के, गांव-गांव में, घर-घर में जैनधर्म का ध्वज फहरता हुआ देख लूँगा, तब ही मेरी आत्मा को शान्ति होगी।

अरे! मेरे कारण इस राहगीर (धोबी के शव की ओर देखते हुए) का मरण व्यर्थ ही हो गया। भगवान इसकी आत्मा को शांति दें।

(अकलंक के इन उद्‌गारों का प्रेक्षक सभा ने तालियों की गड़गडाहट से अनुमोदन किया। साथ-साथ बलिदान के दृश्य से अनेक दर्शकों की आंखों में करुण रस की धारा बंध गई है। पर्दा धीरे-धीरे बन्द होता है और इसप्रकार अकलंक-निकलंक नाटक का 'बलिदान' नामक प्रथम अंक पूरा हुआ।)

जिनधर्म में गुरु तो वे ही हैं, जिनका वेष श्री जिन के समान है; ऐसे रत्नत्रयवन्त गुरु को पहचान कर उनकी सेवा करो। शरीर भले मैला हो, परन्तु उनका चित्त सदा मोह रहित निर्मल होता है। मोक्ष सुख के अलावा कहीं भी उनका चित्त आसक्त नहीं होता। उनके श्रीमुख से हमेशा वीतरागता का उपदेश रूपी परम अमृत झरता है— ऐसे श्रेष्ठ गुरु की तू सेवा कर और पाप पोषक कुगुरुओं का सेवन दूर से ही छोड़ । जो स्वयं अज्ञान और दुराचार से भव-समुद्र में डूब रहे हों, वे दूसरों को किस प्रकार तारेंगे?

साँप, शत्रु और चोर वगैरह का समागम अच्छा है; परन्तु मिथ्यात्व मार्ग में लगे हुए कुगुरुओं का समागम अत्यन्त बुरा है, क्योंकि साँप, शत्रु वगैरह के सम्बन्ध से तो एक भव का ही दुःख होता है, परन्तु कुगुरुओं के संग से तो जीव अनन्त भव में दुःखी होता है।

– सकलकीर्ति श्रावकाचार

द्वितीय अंक

प्रभावना

प्रार्थना

वन्दन हमारा प्रभुजी तुमको, वन्दन हमारा गुरूजी तुमको।।
वन्दन हमारा सिद्ध प्रभु को, वन्दन हमारा अरहंत देव को।।
वन्दन हमारा सब मुनियों को, वन्दन हमारा धर्मशास्त्र को।।
वन्दन हमारा ज्ञानीजनों को, वन्दन हमारा चैतन्यदेव को।।
वन्दन हमारा आत्मस्वभाव को, वन्दन हमारा आत्म भगवान को।।

उपोद्घात : इस नाटक के पहले अंक में अकलंक-निकलंक की बाल्यावस्था ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा, जैनशासन की सेवा की तमन्ना, एकान्त मत के विद्यापीठ में अध्ययन, 'स्यात्' शब्द सुधारना, पकड़े जाना, उसके बाद जेल से भाग जाना और भागते-भागते निकलंक का बलिदान हो जाना, इन दृश्यों का वर्णन हुआ अब दूसरे अंक का नाम है 'प्रभावना'। निकलंक के बलिदान के समक्ष अकलंक ने एकांती को हराकर भारतभर में जैनधर्म का विजयध्वज फहराने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह किसप्रकार पूरी होती है और जैनधर्म की कैसी महान प्रभावना होती है, उसका वर्णन इस दूसरे अंक में आयेगा।

(प्रारम्भ में उज्जैन नगरी के राजदरबार का दृश्य है। उज्जैन के महाराजा के दो रानियाँ हैं। उनमें से एक जैनधर्म की अनुयायी है और दूसरी अन्य एकान्तधर्म की। नाटक में इन रानियों का अभिनय दिखाना कठिन होने से हमने रानियों के प्रतिनिधि के रूप में उनके पुत्र जिनकुमार और अजिनकुमार को रख लिया है।)

पहला दृश्य:–

(उज्जैन नगरी की राजसभा भरी हुई है। चार दरबारी बैठे हैं।)

छड़ीदार : सोने की छड़ी, चांदी की मशाल, मोतियों की माल, नेक नामदार उज्जैन अधिपति महाराजा पधार रहे हैं।

(राजा प्रवेश करते हैं। दरबारी खड़े होकर उनका सम्मान करते हैं। राजा सिंहासन पर बैठते हैं।)

राजा : क्यों मंत्रीजी! क्या समाचार हैं?

मंत्री : महाराज! इससमय तो जैनधर्म की अष्टान्हिका के दिन चल रहे हैं, इसलिए समूचे राज्य में जैनधर्म की बहुत आराधना, प्रभावना हो रही है।

राजा : हाँ, जिनकुमार प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक का गन्धोदक लाता है और मैं उसे मस्तक पर चढ़ाता हूँ। अब आज तो अंतिम दिन है। राजकुमार गन्धोदक लेकर अभी आ ही रहे होंगे।

छड़ीदार : जैनधर्म के परमभक्त, जिनमती महारानी के पुत्र जिनकुमार पधार रहे हैं।

(राजकुमार आ रहे हैं। उनके हाथ में गन्धोदक का पात्र है।)

जिनकुमार : प्रणाम पिताजी! लीजिए यह जिनेन्द्र भगवान का गन्धोदक।

(राजा खड़े होकर हाथ से गन्धोदक लेकर अपने मस्तक पर लगाते हैं।)

जिनकुमार : पिताजी! आज अष्टान्हिका का उत्सव पूरा हो रहा है और प्रतिवर्ष इस उत्सव की पूर्णता के हर्ष में मेरी माताजी जिनेन्द्र-भगवान की महान रथयात्रा निकलवाती हैं; उसीप्रकार इस वर्ष भी वैसी ही भव्य रथयात्रा निकलवाने के लिए आपसे आज्ञा चाहती हैं।

राजा : पुत्र! भगवान की रथयात्रा निकलवाने में मेरी आज्ञा कैसी? मैं तो भगवान का सेवक हूँ। खुशी से रथयात्रा निकालो और सारी उज्जैन नगरी में घुमाकर धर्म की प्रभावना करो।

मंत्रीजी! इस सुअवसर में सारी उज्जैन नगरी को सजाने का प्रबन्ध करो।

मंत्री : जैसी आज्ञा महाराज!

नगरसेठ : अहो! प्रतिवर्ष महाराजा की जिनमती महारानी इस रथयात्रा को निकलवाती हैं, यह उज्जैन नगरी के लिए बहुत ही भव्य और आनन्द का प्रसंग है।

सेनापति : अरे, इस रथयात्रा को देखने के लिए तो देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु इस उज्जैन नगरी में आते हैं।

खजांची : और इस अवसर पर तो अपने राज्य भंडार से करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं का उपयोग भी होता है और रत्नजड़ित स्वर्णरथ में विराजमान जिनेन्द्र भगवान का अद्भुत वैभव देखकर नगरी के अनेक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

राजा : निश्चित ही यह रथयात्रा तो उज्जैन नगरी की शोभा है।

छड़ीदार : अजिनमती महारानी के पुत्र अजिनकुमार पधार रहे हैं।

(अजिनकुमार तेजी से हांफते-हांफते प्रवेश करते हैं।)

अजिनकुमार : प्रणाम पिताजी! मेरी माताजी अजिनमती प्रार्थना करती हैं कि हमारे एकांत धर्म के महान आचार्य संघश्री उज्जैन नगरी में पधारे हुए हैं, इसलिए उनकी खुशहाली हेतु हमारे भगवान की एक विशाल रथयात्रा निकलवाने की हमारी भावना है, अतः आप हमें उसके लिए आज्ञा दीजिए।

राजा : बहुत अच्छा, पुत्र! खुशी से निकालो।

अजिनकुमार : परन्तु पिताजी! मेरी माताजी ने साथ-साथ यह भी कहलवाया है कि जैनों की रथयात्रा तो प्रतिवर्ष निकलती ही है, अतः इस बार हमारा रथ पहले निकले और जैनों का रथ बाद में निकले —ऐसी आप आज्ञा देवें।

नगरसेठ : (आश्चर्य से) हें! हें!! ऐसी कैसी प्रार्थना?

जिनकुमार : (करुण होकर) पिताजी! पिताजी!! इसमें तो जैनधर्म का अपमान होता है। आप आज्ञा मत दीजियेगा। मेरी माता जैनधर्म का अपमान नहीं सह सकेगी।

अजिनकुमार : (कटाक्ष से) हाँ! और मेरी माता भी एकांत धर्म का अपमान सहन नहीं कर सकेगी।

राजा : (सिर पर हाथ रखकर) यह तो बड़ी समस्या पैदा हो गई। एक रानी जैनधर्म का पक्ष लेती है और दूसरी रानी एकांत धर्म का पक्ष लेती है। मेरे लिए तो दोनों रानियाँ एक-सी हैं। अब मैं क्या करूँ? इसका हल किसप्रकार खोजूँ? मंत्रीजी! इसका कोई रास्ता निकालो।

मंत्री : (थोड़ी देर विचार करके) महाराज! इसका एक उपाय मुझे सूझता है।

राजा : क्या उपाय है, कहो! कहो!!

मंत्री : देखिए! जैनधर्म और एकांत धर्म— इन दोनों धर्मों के विद्वान इस राज्य सभा में पधारें और वाद-विवाद करें और वाद-विवाद में जो जीत जाये, उसका रथ पहले निकले।

राजा : वाह! अति उत्तम! बोलो राजकुमारो! तुम्हें यह मंजूर है।

जिनकुमार : जी हाँ महाराज! हम जैनों को यह बात मंजूर है।

राजा : बोलो! अजिनकुमार तुम्हें!

अजिनकुमार : महाराज! मैं मेरी माताजी से पूछकर आता हूँ।

राजा : हाँ, इसी समय पूछकर आओ।

(अजिनकुमार जाता है। थोड़ी देर में लौट आता है।)

अजिनकुमार : महाराज! मेरी माताजी को भी यह बात मंजूर है और हमारे एकांत धर्म की ओर से आचार्य संघश्री स्वयं ही वाद-विवाद करेंगे।

राजा : बहुत अच्छा! और जिनकुमार! तुम भी तुम्हारी माता से पूछकर यह बताओ कि तुम्हारी तरफ से वाद-विवाद में कौन खड़ा होगा।

जिनकुमार : जैसी आज्ञा!

राजा : मंत्रीजी! तुम पूरी उज्जैन नगरी में मुनादी पिटवा दो कि कल राज्यसभा में जैनधर्म और एकांतधर्म के बीच वाद-विवाद का आयोजन किया गया है, उसे सुनने के लिए समस्त नागरिकों को राजदरबार में आने की अनुमति है।

मंत्री : जैसी आज्ञा।

राजा : बस, आज की सभा यहीं समाप्त होती है।

दूसरा दृश्य:-

(जिनमन्दिर में शास्त्रसभा चल रही है। संघपति वगैरह बैठे हुए हैं। एक के बाद एक श्रावक शास्त्र/पोथी लेकर आते हैं। तत्त्वार्थसूत्र पढ़ा जा रहा है। शुरुआत में सब एक साथ मंगलाचरण बोलते हैं:—)

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽःस्तु मंगलम्।।
मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

(संघपतिजी शास्त्र पढ़ते हैं)

''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।।१।।
तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन।।२।।''

अहो, चैतन्यमूर्ति आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान ही भवसागर से तारनेवाला जंहाज है। जो जीव दुखमय संसार समुद्र में डूबना नहीं चाहते हैं और उसको तैरकर मोक्षपुरी में अनन्त सिद्ध भगवंतों के धाम में जाना चाहते हैं, वे निरन्तर दिन और रात, क्षण-क्षण और पल-पल इस सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करें। सम्यग्दृष्टि को जैनधर्म की प्रभावना का परम उत्साह होता है। भगवान की रथयात्रा आदि महोत्सवों के द्वारा वह जैनधर्म की प्रभावना करता है। देखो! अपनी महारानी साहिबा जिनमती प्रतिवर्ष कितनी भव्ययात्रा निकालती हैं! कल भी ऐसी ही भव्य यात्रा निकलेगी, उसमें सब उत्साह से भाग लेना।

(जिनकुमार हाँफते-हाँफते आते हैं।)

संघपति : पधारो! पधारो कुंवरजी! कैसे आज अचानक पधारना हुआ?

जिनकुमार : संघपतिजी! मेरी माताजी ने एक विशेष सन्देश देने के लिए मुझे आपके पास भेजा है।

संघपति : कहो, माताजी का क्या सन्देश है?

जिनकुमार : आप सब जानते हैं कि प्रतिवर्ष हम जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा निकलाते हैं, परन्तु इस बार अजिनमती माता ने बीच में आकर हठ धारण कर लिया है कि जैनों का रथ पहले न निकले, उनके एकांतधर्म का रथ पहले निकले।

सब (एक साथ) : (चौंककर) अरे! फिर क्या हुआ?

जिनकुमार : अतः महाराज साहब ने ऐसा निश्चित किया है कि जैनों और एकांतियों का राज्यसभा में वाद-विवाद हो और उसमें जो जीत जाये, उसी का रथ पहले निकले। हमने यह चुनौती स्वीकार कर ली है अर्थात् अब कल एकांती आचार्य संघश्री के साथ वाद-विवाद कर सके— ऐसे किसी समर्थ विद्वान को अपनी ओर से तैयार करना है और इसलिए ही मेरी माताजी ने मुझे आपके पास भेजा है।

संघपति : अरे, यह तो जैन-शासन की प्रतिष्ठा का सवाल है।

जिनकुमार : जी हाँ! इसीलिए मेरी माताजी ने प्रतिज्ञा की है कि जबतक एकांती गुरु को हराकर जैनों का रथ पहले चलवावे — ऐसा कोई विद्वान न आये, तबतक मैं आहार नहीं लूँगी और इस समय वे जिनमन्दिर में भगवान के सामने ध्यान में बैठी हैं।

सब (एकसाथ) : अरे! अरे! महारानी ने ऐसी कठोर प्रतिज्ञा कर ली है।

संघपति : (उलझन के साथ) अरे! एकांतियों के संघश्री

आचार्य महाविद्वान हैं और उनके सामने टिककर उनको हरा सके ऐसा कोई विद्वान इस समय अपनी उज्जैन नगरी में नहीं हैं। अरे! अरे! महारानी ने तो कठोर प्रतिज्ञा लेकर अन्न-पानी भी छोड़ दिया है। हम सब भी प्रतिज्ञा करते हैं कि जबतक महारानी अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगी, तबतक हमारे भी अन्न-जल का त्याग है।

(सब विचारमग्न बैठ जाते हैं। निस्तब्ध शान्ति छा जाती है। थोड़ी ही देर बाद आकाश में से निम्न प्रकार की ध्वनि होती है:— "धर्मबन्धुओ! चिंता मत करो । जैनधर्म की महान प्रभावना करे— ऐसे एक समर्थ विद्वान अभी तुम्हारी नगरी में आकर पहुँचने वाले हैं।" यह आकाशवाणी सुनकर सब हर्षित हो जाते हैं।)

संघपति : अहो, देखो! देखो!! आकाश में से देवता भी जैनधर्म के विजय की भविष्यवाणी कर रहे हैं, इसलिए हमें अब चिंता छोड़कर महारानीजी को शीघ्र ही यह बधाई-सन्देश पहुँचाना चाहिए और उस प्रभावशाली विद्वान के महा-स्वागत की तैयारी करनी चाहिए।

श्रोता : हाँ चलो।

(सब अन्दर पर्दे के पीछे जाते हैं। बैण्ड बाजे सुनाई देते हैं। बाजे सहित स्वागत करते हुए अकलंक को मंच पर लाते हैं। अकलंक और सघंपति उच्चासन पर बैठते हैं।)

संघपति : पधारिये विद्वान! पधारिये!! आप जैसे प्रभावशाली साधर्मी को देखकर हमें बहुत ही आनन्द हो रहा है, कृपया आप अपना परिचय देने की कृपा करें।

अकलंक : मेरा नाम अकलंक है। मैं अरहंतदेव का परमभक्त हूँ। मान्यखेट नगरी के राजमंत्री का मैं पुत्र हूँ। मेरे छोटे भाई का नाम निकलंक था। हम दोनों ने अपना सारा जीवन जैन-शासन की सेवा में समर्पित कर दिया था। मेरे भाई निकलंक का तो एकांती लोगों ने बलिदान ले लिया और अब जैन-शासन की सेवा का बाकी रहा काम पूरा करने के लिए मैं देश-विदेश में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ आप

सब साधर्मी भाइयों को देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। यहाँ का संघ सब प्रकार से कुशल तो है ?

संघपति : भाई! क्या बताऊँ? अब तक तो हमारा संघ बड़ी भारी चिंता में था, परन्तु अब आपके पधारने से सारी चिंता दूर हो गई है।

अकलंक : ऐसी वह बड़ी भारी चिंता क्या थी?

संघपति : सुनिये भाई! यहाँ कल जैनधर्म की महान रथयात्रा निकलनी है, लेकिन यहाँ की अजिनमती रानी ने हठ ठान लिया है कि पहले एकांती का रथ निकलेगा, फिर जैनों का। अब राजा साहब के आदेशानुसार यदि संघश्री आचार्य को हम वाद-विवाद में जीत सकें तो ही अपनी रथयात्रा पहले निकल सकती है, परन्तु हमारी उज्जैन नगरी में ऐसा कोई विद्वान नहीं है कि जो एकांती गुरु को हरा सके, इसलिए हम महान चिंता में पड़े हुए थे और महारानी सहित हम सबने अन्न-जल का त्याग कर दिया था। तभी आकाश से ऐसी आवाज करके जैनधर्म की भक्त देवी ने आपके आगमन की पूर्व सूचना दी, अब आपके जैसे समर्थ विद्वान के पधारने पर हमारी सारी चिंता दूर हो गई है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप संघश्री आचार्य को वाद-विवाद में अवश्य जीत लेंगे और जैनधर्म के विजय का डंका बजायेंगे।

अकलंक : (उत्साह से छाती ठोककर) वाह! वाह!! यह तो मेरा ही काम है। मैं तो ऐसे ही मौके की तलाश में था। एकांती के संघश्री आचार्य तो क्या, साक्षात् उनके भगवान भी आ जाएँ तो भी वे वाद-विवाद में टिक नहीं सकेंगे।

(सब हर्षपूर्वक एक साथ बोल उठते हैं:— वाह! वाह! बोलिए जैनधर्म की जय!!)

संघपति : ठीक! तो फिर अपनी ओर से ये अकलंककुमार वाद-विवाद करेंगे —यह समाचार हम संघश्री को दे आते हैं।

अकलंक : बड़ी खुशी के साथ। मेरे छोटे भाई के बलिदान का मूल्य लेने का और जैनधर्म की महान प्रभावना का यह प्रसंग आया है। लाओ! मैं स्वयं ही उनको पत्र लिख देता हूँ।

(पत्र लिखकर देते हैं)

संघपति : (एक अन्य धन्यकुमार नामक व्यक्ति) धन्यकुमार! यह पत्र आचार्य संघश्री को दे आओ।

(वह जाकर थोड़ी देर में लौट आता है।)

संघपति : क्यों धन्यंकुमार! पत्र दे आये हो?

धन्यकुमार : जी हाँ, ऐसा महान विद्वता-पूर्ण पत्र पढ़ते ही संघश्री आचार्य का मद तो चकनाचूर हो गया। संघपतिजी! आप सब निश्चिंत रहना, विजय तो अपनी ही होनी है।

संघपति : बोलिए, जैनधर्म की जय!

जीवों को देव-गुरु-शास्त्र के प्रति सेवा का भाव, संसार से विरक्ति और मोक्षमार्ग साधने का उत्साह अर्थात् रत्नत्रय की भावना कोई महान सद्भाग्य से ही प्राप्त होती है।

हृदय सदा वैराग्य से भरा हुआ रहना, ज्ञान के अभ्यास में सदा तत्पर रहना, सभी जीवों के प्रति समता भाव रखना— ये तीनों बातें महान भाग्यवान जीव को ही प्राप्त होती हैं।

– सकलकीर्ति श्रावकाचार

तीसरा दृश्य:-

(राज्यसभा में राजा, मंत्री आदि बैठे हैं। एक तरफ से ''बोलिए! जैनधर्म की जय'' ऐसे जय-जयकार के साथ अकलंककुमार अपनी मंडली सहित प्रवेश करते हैं। दूसरी ओर से संघश्री नाम के आचार्य अपनी मंडली सहित अपने धर्म की जय-जयकार करते हुए प्रवेश करते हैं। नागरिक एक-एक करके आते हैं। सम्पूर्ण सभा-मण्डप में भीड़ हो जाती है।)

राजा : सभाजनो और प्रजाजनो! सुनो, आज इस सभा में एकांती अजैनों और जैनों के विद्वानों के बीच वाद-विवाद हो रहा है। उसमें एकांत पक्ष की ओर से आचार्य संघश्री बोलेंगे और जैन पक्ष की ओर से मान्यखेट नगर के राजमंत्री के विद्वान पुत्र अकलंककुमार बोलेंगे। इस वाद-विवाद को करते-करते जो योग्य जवाब नहीं दे सकेगा। अथवा मौन हो जायेगा, वह हारा हुआ समझा जायेगा। जो जीतेगा, उसकी रथयात्रा पहले निकलेगी। बस, अब चर्चा प्रारम्भ होती है, सब शान्ति से सुनिये।

संघश्री : बोलिए महानुभाव! आपके जैनधर्म का मूल सिद्धान्त क्या है?

अकलंक : हमारे जैनधर्म का मूल सिद्धांत 'अनेकान्त' है।

संघश्री : अनेकान्त का क्या अर्थ है?

अकलंक : प्रत्यके वस्तु में अनेक धर्म रहते हैं, यही अनेकान्त है। परस्पर सापेक्ष अनेक धर्मों के द्वारा ही वस्तु की सिद्धि हो सकती है। सर्वथा एकान्त के द्वारा वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती।

संघश्री : एक ही वस्तु में परस्पर विरुद्ध दो धर्म कैसे हो सकते हैं?

अकलंक : एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं, लेकिन कथंचित् विरुद्ध दो धर्म एक वस्तु में रहते हैं।

संघश्री : 'सर्वथा विरुद्ध' और 'कथंचित् विरुद्ध' का मतलब क्या है?

अकलंक : जैसे कि चेतनपना और अचेतनपना अथवा मूर्तपना एवं अमूर्तपना — ये एक-दूसरे से सर्वथा विरुद्ध हैं। ये दोनों धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं। जो चेतन होता है, वह अचेतन नहीं होता। जो मूर्त है, वह अमूर्त नहीं होता। परन्तु नित्यपना और अनित्यपना —ये दोनों कथंचित् विरुद्ध धर्म हैं और ये दोनों एक ही वस्तु में एक साथ रह सकते हैं।

संघश्री : क्या नित्यपना और अनित्यपना, दोनों धर्म एक ही वस्तु में एक साथ रहते हैं?

अकलंक : जी हाँ।

संघश्री : नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। एक वस्तु को नित्य कहना और उसी को फिर अनित्य कहना— यह तो 'स्ववचन बाधित' होगा।

अकलंक : जो एक आँख बन्द करके देखते हैं, उनको ही यह 'स्ववचन बाधित' जैसा लगता है, परन्तु जो दोनों आँखें खोलकर देखते हैं, उनको तो एक ही वस्तु नित्य और अनित्य ऐसे दो स्वरूप में स्पष्ट दिखाई देती है।

संघश्री : वाह! एक ही वस्तु और स्वरूप दो?

अकलंक : हाँ! एक ही वस्तु अनेक धर्मों वाली है। जो वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, वही वस्तु पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। सुनिये :-

आत्मा द्रव्य अपेक्षा नित्य है......पर्याय अपेक्षा अनित्य.....।
बालकादि तीन का....ज्ञान एक को होय.....॥१॥
क्रोधादिक तरतम्यता...सर्पादिक की मांहि.....।
पूर्व जन्म संस्कार से.....जीव नित्यता होय॥२॥
अथवा क्षणिक ज्ञान को......जो जाने कहनार......।
कहनेवाला क्षणिक नहीं....कर अनुभव निरधार....॥३॥

संघश्री : नहीं, नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता।

महोदय, आपने तो कह दिया कि यह हो ही नहीं सकता, लेकिन क्यों?— यह आपने नहीं बताया। अत: आपके धर्म का क्या मत है, वह कहिये?

संघश्री : हमारे धर्म का सिद्धांत है कि जो जगत में दिखता है, वह सब क्षणिक है, अनित्य है, नाशवान है, अध्रुव है, क्षणभंगुर है।

अकलंक : वाह रे वाह आपका क्षणिकवाद! मैं पूछता हूँ कि आप स्वयं नित्य हैं या क्षणिक?

संघश्री : मैं भी अनित्य हूँ और मेरा आत्मा भी अनित्य है। वह क्षण-क्षण में नया-नया होता है।

अकलंक : वाह! वाह! जिसने अबतक मेरे साथ चर्चा की है और जो अब चर्चा करेगा, वह आप स्वयं ही हैं या दूसरा है?

संघश्री : नहीं, मैं नहीं हूँ। जिसने पहले आपके साथ चर्चा की वह दूसरा था, जो अभी बोलता है वह दूसरा है और जो अब आगे बोलेगा वह तीसरा।

अकलंक : तो क्या मैं जिससे प्रश्न पूछता हूँ, वही मुझे जवाब नहीं देता है?

संघश्री : नहीं। आपका प्रश्न जो सुनता है, वह जीव अलग है और जो आपको जवाब देता है, वह जीव अलग है।

अकलंक : तो अब तक मेरे साथ चर्चा करनेवाले आप ही हैं या दूसरे?

संघश्री : नहीं, वह मैं नहीं हूँ। वह आत्मा दूसरा था और मैं दूसरा हूँ।

अकलंक : वर्तमान क्षण से पहले आपका अस्तित्व था या नहीं?

संघश्री : नहीं।

अकलंक : अरे! अरे! एकान्त क्षणिकवादी अज्ञान में अन्ध होकर अपने अस्तित्व का ही आप इंकार कर रहे हो। अपना अस्तित्व प्रत्यक्ष होने पर भी उसका स्वयं ही निषेध कर रहे हो। वाह रे! अज्ञान!! ठीक, अब मैं आपसे जो प्रश्न पूछूँगा, उनका जवाब आप स्वयं ही देंगे या कोई दूसरा?

संघश्री : मेरे पीछे दूसरा आत्मा उत्पन्न होगा, वह जवाब देगा।

अकलंक : तब तो तुम्हें हार स्वीकार करनी पड़ेगी।

संघश्री : किसलिए?

अकलंक : क्योंकि मेरे प्रश्न का उत्तर देने की जिम्मेदारी आपकी है, परन्तु आपके सिद्धांत के अनुसार आप स्वयं तो मेरे प्रश्न का उत्तर दे नहीं सकते। इसलिए आपका एकान्त क्षणिकवाद का पक्ष

हार गया। अथवा मेरे प्रश्न का जवाब देने के लिए आपको अपनी नित्यता स्वीकारनी पड़ेगी और इसप्रकार भी आपका पक्ष उड़ जाता है और अनेकान्त सिद्ध होने पर जैनधर्म की विजय होती है।

(इस प्रकार अनेक दिनों तक संघश्री और अकलंककुमार में वाद-विवाद होता रहा, अंत में संघश्री घबडा गये।)

संघश्री : (थोड़ी देर मस्तक पर हाथ लगाकर और फिर राजा की ओर देखकर) महाराज! मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं, इसलिए यह चर्चा अब कल के लिए रखी जाए।

राजा : बोलिए, अकलंककुमार! आपका क्या मत है ?

अकलंक : महाराज! सही बात यह है कि इनके सिर में चक्कर नहीं आये हैं, बल्कि इनकी बुद्धि ही चक्कर में पड़ गई है; इसलिए यह बहाना खोजा है। खैर, कल ये जवाब देवें, परन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि ये तो क्या, इनके भगवान साक्षात् भी आ जाएँ तो भी जवाब नहीं दे सकते।

राजा : आज की सभा कल तक के लिए स्थगित की जाती है।

(सभा बिखर जाती है, पर्दा गिरता है)

श्री जिनेन्द्र देव, वीतराग धर्म और निर्ग्रन्थ गुरु— ये तीनों सम्यक्त्व के प्रमुख कारण हैं अर्थात् इन तीनों की यथार्थ पहचान और श्रद्धा से सम्यग्दर्शन होता है । हे वत्स! यह सम्यग्दर्शन अमृत समान है, क्योंकि यह सर्व दोष रहित है । भगवान तीर्थंकर परमदेव ने स्वयं इसका निरूपण किया है। इन्द्र भी इसे भक्तिभाव से सेवन करते है। ऐसे सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होते ही अनेक उत्तम गुण स्वयमेव प्रगट हो जाते हैं। मोक्ष रूपी पेड़ का बीज सम्यग्दर्शन है।

हे भव्य! तू सर्व प्रकार की शंका छोड़ कर इस को धारण कर, सम्यक्त्व रूपी आनन्द-अमृत का पान कर।

– सकलकीर्ति श्रावकाचार

चौथा दृश्य:-

(पुन: राज्यसभा शुरु होती है सभा में एक ओर पर्दा है, उसके पीछे आचार्य संघश्री बैठे हैं, उनके बगल में एक मटका कपड़े से मुंह बांधकर रखा गया है। अकलंक आदि सभा में प्रवेश करते हैं।)

राजा : क्यों, आज संघश्री महाराज अभी तक नहीं आए? क्या अभी उनके सिर के चक्कर ठीक नहीं हुए?

अजिनकुमार : महाराज, एक खास वजह से वे सामने आकर नहीं बोलेंगे. परन्तु पर्दे में रहकर जवाब देंगे।

राजा : ऐसा क्यों?

जिनकुमार : महाराज! वे हमारे अकलंककुमार का प्रताप सीधा नहीं झेल सकते हैं, इसलिए पर्दा रखा होगा।

अकलंक : ठीक है महाराज! वे पर्दे में रहकर ही जवाब दें। देखिए, अब शीघ्र ही मैं इस पर्दे का रहस्य सामने लाता हूँ। बोलिए! संघश्री! ये आत्मा नित्य है या अनित्य?

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है— आत्मा नित्य नहीं है, सर्वथा क्षणिक है, दूसरे क्षण में वह नष्ट हो जाती है और अपने संस्कार छोड़ती जाती है, इसलिए वह नित्य जैसी प्रतिभासित होती है, यह भ्रम है। वास्तव में जगत में सब क्षणिक है।)

अकलंक : संघश्री! आपने जो कहा है, उसे ये उपस्थित नागरिक साफ-साफ सुन नहीं सके हैं, अत: इसी बात को पुन: कहिये।

(अन्दर से किसी के बोलने की आवाज नहीं आती।)

अकलंक : बोलिए संघश्री! क्यों नहीं बोलते? बोलिए! जवाब दीजिए।

(थोड़ी देर फिर शान्ति रहती है।)

राजा : बोलिए संघश्री! अन्यथा आप निरुत्तर हो गये समझे जायेंगे।

(पुन: थोडी देर शान्ति)

राजा : (खड़े होकर) कल भी आप निरुत्तर हो गये थे और आज भी आप निरुत्तर हो गये हैं, अत: मैं अकलंककुमार की विजय घोषित करता हूँ और जैनधर्म की रथयात्रा पहले निकलेगी।

जिनकुमार : (हर्षोल्लासपूर्वक) बोलिए, जैनधर्म की जय!

(हाथ में स्थित जैन झंडे को ऊंचा फहराकर पुन: बोलता है।)

जिनकुमार : "बोलिए जैनधर्म की जय! अकलंककुमार की जय!!"

अकलंक : महाराज देखिए! अब मैं इस पर्दे का रहस्य प्रकट करता हूँ।

(पर्दे के पास जाकर उसको दूर हटा देते हैं और मटका हाथ में लेकर बताते हैं।)

राजा : अरे! यह क्या?

अकलंक : सुनिए! कल वाद-विवाद में संघश्री जवाब न दे सके थे, इसलिए परेशान होकर सिर में चक्कर आने का झूठा बहाना निकाला और फिर उन्होंने किसी भी प्रकार से विजय प्राप्त करने के लिए रात्रि में विद्या द्वारा एक देवी को साधा है। पर्दे के पीछे से संघश्री नहीं बोल रहे थे, अपितु उनके स्थान पर इस मटके में स्थित देवी जवाब देती थी, परन्तु जिन-शासन के प्रभाव से जैनधर्म की भक्त देवी ने रात्रि में आकर मुझे यह बात बता दी थी, अत: आज संघश्री से एक ही बात पुन: दूसरी बार पूछी, परन्तु देव एक ही बात दूसरी बार नहीं बोलते हैं, इसलिए संघश्री का भेद खुल गया है।

राजा : अर र र र र .....! धर्म के नाम पर इतना दम्भ!

इतना कपट!! अकलंककुमार! आपके विद्वत्तभरे न्याय-वचन सुनकर मुझे बहुत ही आनंद हुआ है। अनेक युक्तियों द्वारा आपने अनेकान्तमय जैनधर्म को सिद्ध किया है। उससे प्रभावित होकर मैं जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ और जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा में मैं ही भगवान के रथ का सारथी बनूँगा। मंत्रीजी! जिनेन्द्र रथयात्रा की तैयारी धूमधाम से करो। उसके लिए राज्य के भंडार खोल दो और राज्य के हाथी, घोड़े आदि समस्त वैभव को रथयात्रा की शोभा हेतु बाहर निकालो।

मंत्री : जैसी आज्ञा!

(ऐसा कहकर मंत्री चला जाता है।)

एकांती शिष्य गण : (एक साथ सब खड़े होकर) महाराज! हमारे आचार्यश्री ने जो अयोग्य कार्य किया है, उससे हमें दुख हो रहा है। यह वाद-विवाद सुनकर हम भी जैनधर्म से प्रभावित हुए हैं, इसलिए एकान्त धर्म छोड़कर हम भी जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

प्रजाजन : (एक साथ खड़े होकर) महाराज! हम भी जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

संघपति : चलो बन्धुओ! आज इन अकलंक महाराज के प्रताप से हमारे जैनधर्म की बड़ी सुन्दर विजय हुई और खूब प्रभावना हुई। इस खुशहाली में हम सब जैनधर्म की महिमा का एक गीत गाते हैं।

सभाजन : हां चलो! चलो!! आज तो महा आनन्द का प्रसंग है।

(सब खड़े होकर भजन गाते हैं। संघपति के एक ओर राजा हैं, दूसरी ओर अकलंक हैं। जिनकुमार के हाथ में झंडा लहरा रहा है। संघपति गीत गा रहे हैं।)

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला ।।टेक।।
इसी धर्म में वीरप्रभु ने, मुक्ति का मारग खोला।
मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला।।१।।

इसी धर्म में निकलंक वीर ने, प्राण तजे बिन बोला।
मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला।।२।।

इसी धर्म में अकलंकदेव ने, एकांती झकझोरा।
मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला।।३।।

(पर्दे के पीछे रथयात्रा की तैयारी का सूचक बैण्ड बज रहा है।)

मंत्री : (पीछे से आकर) महाराज! रथयात्रा की सारी तैयारी हो चुकी है। भगवान का रथ भी तैयार है। आप सब पधारिये।

(सब पर्दे में जाते हैं।, बैंड-बाजे की आवाज चालू है। केवल संघश्री मुंह नीचे किये बैठे हैं। पर्दा गिरता है।)

(डम.....डम.....डम..... इस प्रकार बाजा बज रहा है। "जय हो! विजय हो!" ऐसा जयानाद होता है। भव्ययात्रा आती है। अकलंक महाराज के हाथ में झंडा है। राजा, जिनकुमार, संघपति आदि साथ

में हैं। मंगलबाजा बज रहा है, रत्नजड़ित गजरथ में जिनेन्द्र भगवान विराजमान हैं। पीछे लाखों नागरिक हैं, रथयात्रा मंच पर आने पर भगवान को सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक-पूजन किया जा रहा है।)

(अकलंक अभिषेक-पूजन की विधि सम्पन्न कराते हैं)

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥
मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

ॐ ह्रीं भगवान श्री सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्रदेव के चरणकमल पूजनार्थ अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इतने में अजिनकुमार दौड़ता हुआ आता है और अकलंक को नमस्कार करता है।)

अजिनकुमार : (गद्गद् होकर) महाराज! मुझे क्षमा करो, आज की भव्य रथयात्रा देखकर नगरी के लाखों लोग प्रभावित हुए हैं। ऐसी रथयात्रा में हमने विघ्न डाला है, इसके लिए बहुत-बहुत पश्चाताप है। इसलिए मेरी माता अश्रुपूरित आंखों से आपसे क्षमा मांगती है और हम भी जैनधर्म को अंगीकार करते हैं। उदार दिल से आप हमें क्षमा करके जैनधर्म में लगायेंगे ऐसी आशा करते हैं।

अकलंक : अवश्य! अवश्य! धन्य है तुम्हारी माता को! जो वे अपने हिताहित का विवेक कर सन्मार्ग की ओर झुक रही हैं। जैनधर्म सारी दुनिया के लिए खुला है। आओ! आओ! जिसे अपना हित करना हो, वह जैनधर्म की शरण में आओ।

(आचार्य संघश्री अनेकों शिष्यों के साथ शरण में आकर गद्गद् भाव से कहते हैं।)

संघश्री : भाई! भाई! मुझे क्षमा करो। मुझ पापी ने ही तुम्हारे

भाई की हत्या कराई थी। मेरे दुष्ट कार्य के लिए मुझे क्षमा करो। आपका उदार एवं पतित-पावन जैनधर्म अवश्य मुझे क्षमा करेगा और मेरा कल्याण करेगा। हे अकलंक! आप सचमुच ही अकलंक हो। मुझे क्षमा करो और जैनधर्म की शरण में लो।

अकलंक : (वात्सल्यपूर्वक संघश्री के कन्धे पर हाथ रखकर) खुशी से जैनधर्म की शरण में आओ। जैनधर्म के द्वार सब के लिए खुले हैं। आओ! आओ! जिसे अपना कल्याण करना हो, वह जैनधर्म की शरण में आओ। पहले जो कुछ हो चुका, उसे भूल जाओ और शान्तचित्त से जैनधर्म की आराधना करो।

संघश्री : अहो! जैनधर्म की महत्ता मेरी समझ में अब आई है और मुझे पुरानी भूलों पर पश्चाताप हो रहा है, इसी से पता चलता है कि आत्मा नित्य और अनित्य ऐसे अनेकान्त स्वरूप है। यदि पहले भूल करनेवाला स्वयं नित्य न हो, तो इस समय पश्चाताप कैसे हो? क्या भूल एक करता है और पश्चाताप दूसरा करता है? क्या सचमुच ऐसा हो सकता है; इसलिए आत्मा की नित्यता है —यह सही-सही समझ में आता है और भूल छोड़कर यथार्थता प्रकट हो सकती है, यही सूचित करता है कि अनित्यता भी है। इस प्रकार जैनधर्म के प्रताप से मुझे अनेकान्तमय वस्तु समझ में आयी है। आपके ही प्रताप से मुझे अपूर्व शान्ति का मार्ग प्राप्त हुआ है। मैं आपका महा उपकार मानता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जैनधर्म में स्वीकार कीजिये।

अकलंक : देखो! ये जिनेन्द्र भगवान विराज रहे हैं। आओ! इनकी शरण लेकर जैनधर्म स्वीकार करें।

(संघश्री जिनेन्द्र भगवान की ओर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और अकलंक जिसप्रकार बुलवाते हैं, वैसा ही बोलते हैं, प्रत्येक वाक्य एक बार अकलंक बोलते हैं, उसके बाद संघश्री बोलते हैं।)

अरहंते शरणं पव्वज्जामि। सिद्धे शरणं पव्वज्जामि। साहू शरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णंत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि।

संघश्री : हे भगवान जिनेन्द्रदेव! आपके पवित्र शासन को अंगीकार करके मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरा भाग्य है कि मुझे ऐसे उत्तम जैनधर्म की प्राप्ति हुई। अहो! जैनधर्म के तत्त्व महान उत्तम है।

अकलंक : धन्य है भाई! तुम्हारा ऐसा उत्तम हृदय-परिवर्तन देखकर मुझे अपार हर्ष हो रहा है और वात्सल्य उमड़ रहा है कि मानो मेरा निकलंक भाई ही तुम्हारे रूप में जैनधर्म की भक्ति करने आया हो। तुमने जैनधर्म स्वीकार किया है, इसलिए मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है। भक्तिपूर्वक उसकी आराधना करके आत्मकल्याण करो। जगत में ये जिनेन्द्र भगवान का धर्म ही परमशरणरूप है।

संघश्री : भाई! आपके प्रताप से आज मुझे जिनेन्द्र देव का धर्म प्राप्त हुआ, इसलिए मेरे हृदय में अपार हर्ष हो रहा है और जिनेन्द्र देव की भक्ति के द्वारा मैं अपना हर्ष व्यक्त करना चाहता हूँ।

अकलंक : यह बहुत अच्छी बात है। जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में हम भी आपका सहर्ष साथ देंगे।

(जैनधर्म के भक्त विद्वान संघपति गद्गद् भाव से निम्नलिखित भक्ति गाते हैं। अन्य सब लोग भी उसे दोहराते हैं।)

एक तुम्हीं आधार हो जग में, ए मेरे भगवान,
कि तुमसा और नहीं बलवान।
सम्भल न पाया गोते खाया तुम बिन हो हैरान,
कि तुमसा और नहीं गुणवान।।टेक।।

आया समय बड़ा सुखकारी, आतम बोधकला विस्तारी।
मैं चेतन, तन वस्तु न्यारी, अनेकान्तमय झलकी सारी।।
निज अंतर में ज्योति ज्ञान की, अक्षय निधि महान।।१।।

दुनिया में एक शरण जिनन्दा, पाप-पुण्य का बुरा है फंदा।
मैं शिवभूप रूप सुखकन्दा, ज्ञाता-द्रष्टा तुम-सा बन्दा।।
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान।।२।।

सहज स्वभाव भाव अपनाऊँ, पर-परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग में जनम न पाऊँ, सिद्ध-समान स्वयं बन जाऊँ।।
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का, है सौभाग्य महान।।३।।

(धीरे-धीरे भक्ति की धुन जमती जाती है। संघश्री एकदम रंग में आकर हाथ में चंवर लेकर भगवान के सम्मुख भक्ति से नाच उठते हैं। अत्यंत गद्‌गद् होने पर आंखों में अश्रुधारा बरसती है और इसप्रकार जैनधर्म की प्रभावना पूर्वक यह नाटक समाप्त होता है।)

सभी : बोलो! अनेकान्तमार्ग-प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान की जय!!

जो परम वीतराग जिनदेव को छोड़ कर तुच्छ विषयासक्त कुदेवों को पूजते हैं, उन मूर्ख जीवों के मिथ्यात्व-पाप का क्या कहना? वे भयंकर भव-समुद्र में डूबते हैं..... अमृत को छोड़ कर जहर पीते हैं। जिस प्रकार आकाश से किसी की बराबरी नहीं, उसी प्रकार भगवान जिनेन्द्र देव से किसी अन्य की बराबरी नहीं।

इसलिए हे भव्य ! तू ऐसे भगवान को पहचान कर उनके द्वारा कहे हुए धर्म का ही आचरण कर। उस धर्म के आचरण से तू भी भगवान बन जायेगा ।

धर्मरूपी जो कल्पवृक्ष है, उसका फल मोक्ष है और उसका मूल सम्यग्दर्शन है। दुष्ट जीवों के हृदय में रहने वाली पाप—मलिनता कोई पानी के स्नान से धोई नहीं जाती, वह तो सम्यग्ज्ञान के पवित्र जल से ही धोई जाती है। मृत माता-पिता वगैरह के लिए दान देना कोई श्राद्ध नहीं, परन्तु केवल अपने धर्म पालन के लिए श्रद्धा पूर्वक सुपात्र को दान देना ही सबसे उत्तम श्राद्ध है। मृत व्यक्तियों के लिए किया जाने वाला श्राद्ध तो मिथ्यात्व पोषक है। अज्ञान और राग-द्वेष में अत्यन्त आसक्त मूर्ख जीव ही कुधर्म का उपदेश ग्रहण करते हैं। अज्ञानियों को ठगने के लिए ही कुधर्म का उपदेश अनेक दोषों से भरा हुआ है, इसलिए हे भव्य ! तू उसे जहरीले साँप के समान जान कर छोड़ दे।

– सकलकीर्ति श्रावकाचार

अकलंक निकलंक चरित्र

मंगलाचरण

वंदू श्री जिनराज के चरण कमल चित लाय।
निकलंक और अकलंक की चर्चा लिखूँ बनाय।।

अनुभव में आई जिसी लिखी जिनागम देख।
धर्म प्रचारक हो गये जैनागम में लेख।।

(दोहा)

मानखेटपुर नगर में जन्में दोऊ भ्रात।
माता श्री पद्मावति अरु पुरुषोत्तम तात।।

एक समय उस नगर में आये श्री मुनिराज।
दर्शन हित आई तभी सारी जैन समाज।।

पुरुषोत्तम पद्मावती ब्रह्मचर्य तहँ लेंय।
दोऊ पुत्र तब पूछते हमहु ग्रहण कर लेंय।।

मात-पिता को भेद नहिं यह जाने अन्जान।
हंस कर देखें प्यार से इन स्वीकृति ली मान।।

मात-पिता शादी रचें और कहें समझाय।
तुमने व्रत दिलवाइयो, पालें छोडें नाहिं।।

हंसी-हंसी की बात वह, सचमुच में नहिं पुत्र।
तातें ब्याह कराय लो फिर धरियो चारित्र।।

समझाने पर अकलंक तथा निकलंक दोनों हैं कहते।
सचमुच वैराग्य जगा हमको अब गृह में भी नहिं रह सकते।।

तुम क्यों शादी की बात करो शादी संसार बढ़ाती है।
संसार से होना मुक्त हमें बस वीतरागता भाती है।।

हम ब्रह्मचर्य व्रत धारन कर अब गांव-गांव में घूमेंगे।
अरु धर्म प्रचारक बन करके फिर धर्म का झूला झूलेंगे।।

जन-जन में तभी प्रचार हुआ मशहूर हुए दोनों भाई।
तब बौद्ध व्यक्तियों ने जाकर राजा को स्थिति समझाई।।

विद्वान नगर में जैनों के जैनों को वे समझाते हैं।
होता लेकिन ऐसा उनके कहने में सब आ जाते हैं।।

लगता है मुझको बौद्धों पर भी असर पड़ेगा निश्चित ही।
इसलिये कार्यवाही जल्दी से जल्दी तुम करदो अब ही।।

फिर क्या था उन दोनों को नृप इज्जत के साथ बुलाते हैं।
उनका यश गा-गा कर उनको यह अपना पाठ पढ़ाते हैं।।

राजा बोले तुम बुद्धिमान गुणवान समझ में आते हो।
फिर बौद्ध क्यों नहीं बन जाते क्यों जैनों में दुख पाते हो।।

जैनों की स्याद्वाद कथनी देखो तो कितनी थोथी है।
वे कहते जीव नहीं मरता केवल पर्याय विनशाती है।।

तातें भोगों को हेय कहें वैराग्य दशा को उपादेय।
बाकी में राग-द्वेष तजकर उनको कहते ज्ञानस्थ ज्ञेय।।

तब वीतरागता आवेगी अरु मोक्ष दशा पा जाओगे।
सारे जीवन में दुख ही दुख फिर सुक्ख कहाँ से पाओगे।।

नहिं-नहिं ऐसा ही है राजन् तुम जिसको थोथी कहते हो।
वह थोथी नहीं बल्कि उसके बिन वस्तु नहीं पा सकते हो।।

वस्तु में गुण होते अनन्त कहने में क्रम से आते हैं।
इसलिए वहाँ पर स्याद्वाद ही वचन काम में आते हैं।।

जैसे मानव है एक किन्तु उसको कइ ढ़ग से जग जाने।
मामा चाचा पापा दादा भानेज सुसर साला माने।।

इस तरह जीव नहिं मरता है पर्याय बदलता रहता है।
नारक नर पशु गति पाता है अज्ञानी नाश मानता है।।

सुख का स्वरूप तुम नहिं समझे इसलिये हमें समझाते हो।
यह भोग रोग की दवा जिसे तुम अनुपम सुक्ख बताते हो।।

जब भूख रोग जिसको उठता वह रूखा-सूखा खा लेता।
पर वही भूख जब शांत होय तब षट्रस व्यंजन नहिं खाता।।

यह जैनधर्म वह अमृत है जो सब रोगों का नाशक है।
जो सब रोगों का नाश चहे वह इसका होय उपासक है।।

फिर भूख प्यास क्या शीत घाम कुछ भी न सताने पाते हैं।
जब क्रोध, लोभ, मद, मोह, राग अरु द्वेष सभी मर जाते हैं।।

फिर कहाँ जरूरत है इसको इसने तो निज को जान लिया।
यह भोग रोग सब तन के हैं मैं तो अविनाशी शुद्ध जिया।।

खाने-पीने की हालत यह संयोग अवस्था के कारण।
इसलिये अपावन होय रहा था मैं अभक्ष्य का कर भक्षण।।

तुम भी अभक्ष्य का त्याग करो जो मुक्ति आप को प्यारी है।
या लाख चौरासी यौनी में भ्रमणें की ही तैयारी है।।

बस-बस करदे वकवास बंद तू हमको क्या समझा सकता।
तुझको कुछ खबर नहीं बालक मैं मृत्यु दंड भी दे सकता।।

समझाता हूँ इकबार तुम्हें तुम अच्छी तरह सोच लेना।
शासन यहाँ बौद्धों का समझे बन करके बौद्ध तुम्हें रहना।।

ले जाओ इन्हें जेल में बस अगले दिन हाजिर करना अब।
क्या कहते हैं सब सुन लेंगे निर्णय है मेरे हाथों सब।

(दोहा)

प्रात होत जब नृपति ने बुलवाये दोऊ भ्रात।
समझा कर कहने लगे जो चाहो कुशलात।।

अब भी सोचो समझो बच्चो हठ छोड़ो जैन धर्मियों की।
यश पाओ समझो बौद्धों को जय बोलो क्षणिकवादियों की।।

यह जीव क्षणिक सिद्धांत मार्ग को जब तक नहिं अपनाता है।
तब तक ही वह भ्रम में रह कर के त्याग-त्याग चिल्लाता है।।

क्षण-क्षण में आता नया जीव अरु पूर्व जीव नश जाता है।
फिर त्यागी भोगी कौन और फिर किसका किससे नाता है।।

इसलिये क्षणिक को समझ आज जीवन भर मौज उड़ाना है।
जीवित हैं जब तक जीवन है मरने पर नहीं ठिकाना है।।

फिर कोई पुनर्भव नहिं होता निश्चय क्या ये ही निश्चय है।
मानो मेरी हठ छोड़ो अब सुख जीवन भर फिर अक्षय है।।

(दोहा)

बस बस रहने दीजिये मत करिये तारीफ।
किस्सा मुझको याद है बिल्कुल शुद्ध शरीफ।।

इक बौद्ध हमारी नगरी में जिसके अब हाल सुनायें हम।
अजमाने धर्म परीक्षा को रहता था उसके दिल में गम।।

इक दिन ग्वाला से कह बैठा हम देंगे ग्वाली नहीं तुझे।
ग्वाली करने वाला था अन्य मालिक भी अन्य नहिं पता मुझे।।

ग्वाला कहता ग्वाली दे दो सिद्धान्त हमें न बतलाओ।
यह कैसा झूठा मजहब है काला मुँह इसका करवाओ।।

फिर युक्ति एक उसको सूझी जो गाय बांध कर राखी है।
तब ग्वाली दे गईया लाया अरु मांगी उससे माफी है।।

वह बोल रहा था क्षणिकवाद सिद्धान्त वास्तविक झूठा है।
तुम भी अब सचमुच निर्णय कर बोलो सच है या झूठा है।।

(दोहा)

सांच-झूंठ लेखा सभी है ईश्वर के हाथ।
धर्म तुम्हारा देखते कब तक देगा साथ।।

समय अभी हमको नहीं कल होगा इंसाफ।
फाँसी ही होगी इन्हें नहीं करेंगे माफ।।

वश क्या था कारागार में अब वे निर्भय होकर जाते हैं।
सैनिक नृप का अन्याय समझ कर स्वयं होश खो जाते हैं।।

वेहोशी देख तभी दोनों मौका पाकर भग जाते हैं।
भग जाने के तब समाचार सैनिक नृप को बतलाते हैं।।

भय के मारे दोड़े-दोड़े जाकर राजा से कहते हैं।
धोखा दे वह हम से छूटे अब तो हमरे दिल कपते हैं।।

हमरे बस की है बात नहीं वे वीर साहसी काफी हैं।
करिये राजा जी कुछ उपाय चाहें कसूर की माफी हैं।।

जाओ-जाओ दोड़ो सैनिक मिल जायें तुम्हें जो पाजी हैं।
पकड़ो या मारो किन्तु हमें सिर दिखलादो हम राजी हैं।।

तब घुड़सवार सैनिक तेजी से पीछा उनका करते हैं।
वह भी मुड़-मुड़ के देख रहे कहते अब नहिं बच सकते हैं।।

तब दोनों भागो भागो कह जोरों से भागे जाते हैं।
अकलंक बड़ी तेजी से भग वे वहीं कहीं छुप जाते हैं।।

निकलंक अभी दोड़े जाते अरहंत प्रभू रटते जाते।
कोइ राहगीर उनसे पूछे लेकिन वह बतला नहिं पाते।।

तब वही व्यक्ति हमदर्दी से दोड़ा उनके पीछे-पीछे।
पूछूंगा जल्दी जाकर मैं क्या चक्कर है इसके पीछे।।

पीछे से सैनिक देख रहे बस मार गिराये दोनों को।
दोनों के सिर फिर काट लिये अरु पेश कर दिये दोनों को।।

अकलंक धड़ों को देख-देख रोते हैं अरु पछताते हैं।
मेरे पीछे यह राहगीर के प्राण व्यर्थ ही जाते हैं।।

निकलंक बता क्या मात-पिता से कहकर मुख दिखलाऊँगा।
प्रण तेरा पूरा हुआ आज मैं कब करके जय पाऊँगा।।

तुम नाम अमर कर गये आज अरु अमर भये जा स्वर्गों में।
सुख स्वर्ग इसे भी निश्चित है परहित चाहा उपसर्गों में।।

अकलंक सोचते हैं मन में वीरों की यही निशानी है।
या तो प्रण पूरा कर छोड़ें या छोड़ें फिर जिन्दगानी है।।

अन्याय से टक्कर लेने वाला सच्चा वीर कहाता है।
अन्याय करे अरु प्रण ठाने नरकों का भाग्य विधाता है।।

मैं न्याय मार्ग का संचालन करने अब आगे बढ़ जाऊँ।
हे वीर मुझे वह शक्ति दो निर्भय हो थारे गुण गाऊँ।।

जाते हैं एक नगर में वे जहाँ का हिमशीतल महाराजा।
जहाँ बौद्धों जैनों का झगड़ा हो रहा उस समय था ताजा।।

हिमशीतल के दो रानी थीं एक बौद्ध दूसरी थी जैनी।
आपस में एक दूसरे की करती रहती नुकता-चीनी।।

वह कहती थी मेरा रथ ही जैनों से पहले निकलेगा।
जैनी रानी भी कहती थी मेरा रथ पहले निकलेगा।।

आपस में जब तकरार बढ़ी अरु न्याय सामने आया है।
जो जीते निकले रथ उसका राजा यह हुक्म सुनाया है।।

पण्डित विद्वत् जन त्यागी गण सब अपने अपने बुलवावें।
शास्त्रार्थ करें आजादी से नहिं कोई किसी का भय खावें।।

अकलंक देव उस नगरी में तब अकस्मात आ जाते हैं।
जैनों का उस क्षण खुशियों के सागर का पार न पाते हैं।।

कह देते हैं जा राजा से शुभ काम में कैसी देरी है।
अकलंक श्री के वचन सुनो मिट जावे भव की फेरी है।।

इनके विरोध में संघश्री बौद्धों को राजा सुनते हैं।
शास्त्रार्थ चला वह छह महिने अकलंक न पीछे हटते हैं।।

कारण वहां तारा देवी ने बौद्धों का साथ निभाया था।
अकलंक श्री ने साहस धर श्री जिनवर का गुण गाया था।।

जिनगुण गाते ही जो देवी जिनगुण धारक की भक्ति में।
आकर के सब समझाती है चक्रेश्वरी देवी उक्ती में।।

तारा देवी घट में बैठी वह पट के अन्दर बोल रही।
लेकिन आगे-आगे बढ़ती पीछे-पीछे का भूल रही।।

इसलिये दुवारा प्रश्न वही पीछे का आगे रख देना।
होगी असमर्थ बताने में हो जायेंगे नीचे नैना।।

इम करत श्री अकलंक तभी बौद्धों से वहां जय पाई है।
राजा-परजा सब जैन हुए यह कथा बड़ी सुखदाई है।।

अकलंक देव मम हृदय बसो जिनधर्म मर्म तुमने खोला।
रचना रच 'प्रेम' खुशी होता मम समय रहा यह अनमोला।।

आचार्य अकलंकदेव : संक्षिप्त परिचय

जैनागम चार अनुयोगों में विभक्त है—

१. प्रथमानुयोग, २. करणानुयोग, ३. चरणानुयोग एवं ४. द्रव्यानुयोग।

द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत सिद्धान्त, अध्यात्म एवं न्यायविषयक ग्रन्थों का समावेश होता है।

सामान्यत: सिद्धान्त ग्रन्थों में षट्खण्डागम— धवला, महाधवला, जयधवला, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड; तत्त्वार्थसूत्र— तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थ आते हैं। अध्यात्म ग्रन्थों में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, नयचक्र आदि ग्रन्थ तथा आत्मख्याति, तत्त्वप्रदीपिका, तात्पर्यवृत्ति आदि टीकायें आती हैं। इसीप्रकार न्याय ग्रन्थों में आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र)— अष्टशती, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, परीक्षामुख सूत्र, प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायदीपिका आदि ग्रन्थ आते हैं।

मुख्यत: सिद्धान्त के प्रणेता आचार्यों में आचार्य धरसेन, भूतबली, पुष्पदन्त, वीरसेन, उमास्वामी, अकलंक, विद्यानन्दि आदि, अध्यात्म के प्रणेता आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र, जयसेन आदि तथा न्याय के प्रणेता आचार्यों में आचार्य समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्दि आदि का समावेश होता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि सिद्धान्त एवं न्याय दोनों विद्याओं में आचार्य अकलंकदेव का समान रूप से अधिकार है। अध्यात्म के क्षेत्र में जो स्थान आत्मख्याति के रचनाकार आचार्य अमृतचन्द्र को प्राप्त है, वही स्थान सिद्धान्त एवं न्याय के क्षेत्र में आचार्य अकलंकदेव को प्राप्त है।

जिसप्रकार जैन अध्यात्म के द्वारा हम धर्म की प्रतिष्ठा स्व में

करते हैं, आत्मा में करते हैं; उसीप्रकार जैन न्याय के द्वारा हम धर्म की प्रतिष्ठा पर में करते हैं, सम्पूर्ण विश्व में करते हैं। निश्चय प्रभावना अंग के द्वारा हम आत्मा की प्रभावना करते हैं तथा व्यवहार प्रभावना अंग के द्वारा हम धर्म को सर्वांगीण तथा सम्पूर्ण जगत में फैलाना चाहते हैं। अत: दोनों दृष्टिकोण अपनी-अपनी जगह तर्कसंगत हैं, आवश्यक हैं, उपयोगी हैं, ग्राह्य हैं; क्योंकि आचार्यों ने भी कहा है कि निश्चय के बिना तत्त्व का लोप हो जायेगा और व्यवहार के बिना तीर्थ की प्रवृत्ति संभव नहीं हो सकेगी।

इसीप्रकार सिद्धान्त एवं न्याय में भी अन्तर है। जहाँ सिद्धान्त के माध्यम से हम स्वमत वालों के साथ बात करते हैं, चर्चा करते हैं, उपदेश आदि देते/दिलाते हैं; वहीं न्याय के माध्यम से हम परमत वालों के साथ बात करते हैं, चर्चा करते हैं, यहाँ तक कि वाद-विवाद आदि भी करते हैं। स्वमत मण्डन तथा परमत खण्डन का कार्य न्याय के द्वारा ही किया जा सकता है। सम्पूर्ण विश्व तथा समस्त धर्म/सम्प्रदाय न्याय व्यवस्था को स्वीकार करते हैं, अत: जैनधर्म को विश्व में न्याय सम्मत बनाने का कार्य जैन न्याय के माध्यम से ही संभव है।

जैन न्याय के क्षेत्र को विकसित तथा समृद्ध बनाने में आचार्य अकलंक देव का विशेष योगदान है। जैन इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि जिस समय सम्पूर्ण भारत में अन्य धर्मों का बोलबाला था, उस समय जैन न्याय के प्रणेता आचार्यों ने जैन न्याय के माध्यम से ही जैनधर्म को सुरक्षित रखा है। आचार्य समन्तभद्र, आचार्य अकलंक और आचार्य विद्यानन्दि उन महान आचार्यों में से हैं, जिन्होंने ऐसे कठिन समय में जैनधर्म को न केवल सामाजिक स्तर पर, अपितु राजनैतिक स्तर पर भी प्रतिष्ठित किया।

अन्य प्राचीन आचार्यों के समान आचार्य अकलंकदेव के व्यक्तिगत जीवन का परिचय भी विशेषतया प्राप्त नहीं होता है। प्रचलित कथाओं के आधार पर यह 'अकलंक-निकलंक' का नाट्यरूपक तो

यहाँ प्रस्तुत किया ही जा रहा है। विशेष इतना है कि किन्हीं के अनुसार ये मान्यखेट्पुर नगर के राजा शुभतुंग के मंत्री पुरुषोत्तम के पुत्र थे; किन्हीं के अनुसार इन्हें कांची के जिनदास नामक ब्राह्मण का पुत्र कहा जाता है और किन्हीं के अनुसार आप लघुहव्व नामक राजा के पुत्र कहा जाता है।

इनके समय के सम्बन्ध में प्रमुखत: दो मान्यतायें सामने आती हैं। एक के अनुसार उनका समय ६२०-६८० ई. सन् तथा दूसरे के अनुसार ७२०-७८० ई. सन् निर्धारित किया गया है, जबकि दोनों धारणाओं में १०० वर्ष का अन्तर है।

साहित्य रचना के क्षेत्र में भी आचार्य अकलंक की अमूल्य देन है। उनकी रचनायें दो प्रकार की हैं। स्वतंत्र ग्रन्थ— १. लघीस्त्रय, २. न्याय विनिश्चय, ३. सिद्धि विनिश्चय, ४. प्रमाण संग्रह। टीका ग्रन्थ— १. तत्त्वार्थवार्तिक, २. अष्टशती। आचार्य अकलंक की शैली गूढ़ एवं शब्दार्थ गर्भित है। ये जिस विषय को ग्रहण करते हैं, उसका गम्भीर एवं अर्थपूर्ण वाक्यों में विवेचन करते हैं। अत: कम से कम शब्दों में अधिक विषय का निरूपण करना इनका ध्येय है।

उक्त सम्पूर्ण विवेचन का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि जब अकलंकदेव इतनी प्रतिभा के धनी हैं तो उनका जीवन किन-किन उतार-चढ़ावों से गुजरा? निकलंक कौन थे? इत्यादि। उक्त प्रश्नों का समाधान इस लघुकृति के माध्यम से प्रस्तुत है। अकलंक-निकलंक के जीवनवृत्त को जानकर हम भी उनके समान बनने का प्रयत्न करें— ऐसी हार्दिक अभिलाषा है।

—पण्डित राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

मोह की हार

पिता- हठ तजो रे बेटा! हठ तजो,
मत जाओ वनवास, बेटा हठ तजो।
पुत्र- मोह तजो रे बापू! मोह तजो,
जाने दो वनवास, बापू मोह तजो।

पिता- वन में कंटक वन में कंकड़,
वन में बाघ विकराल, बेटा हठ तजो।
पुत्र- बाघ सिंह तो परम मित्र सम,
मैं धारूँ आतम ध्यान, पिताजी मोह तजो।

पिता- सुख वैभव की रेलमपेल में,
तू ही एक आधार, बेटा हठ तजो।
पुत्र- यह संसार दावानल सम है,
इनको तृणवत् जान, बापू मोह तजो।

पिता- लाड़ लड़ाऊँ प्रेम से तुझको,
खाओ मिष्ट पकवान बेटा हठ तजो।
पुत्र- क्या करना है राख के ढेर से,
खाये अनन्ती बार, पिताजी मोह तजो।

पिता- ऊँचा बंगला महल मनोहर,
करो मोती श्रृंगार, बेटा हठ तजो।
पुत्र- महल मसान ये हीरा मोती,
ये पुद्‌गल के दास, पिताजी मोह तजो।

पिता- कठिन जोग तप त्याग है बेटा,
फिर से सोच विचार, बेटा हठ तजो।
पुत्र- धन्य सौभाग्य मिला संयम का,
सफल करूँ पर्याय, पिताजी मोह तजो।

पिता- धन्य है तेरी दृढ़ता बेटा,
जाओ खुशी से आज, हमरो मोह घटो।
हमहू चल रहे साथ, हमरो मोह घटो।।

हमारे प्रकाशन

१. चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी) ५०/-
[५२८ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]
२. चौबीस तीर्थंकर महापुराण (गुजराती) ४०/-
[४८३ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]
३. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १) ७/-
४. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २) ७/-
५. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ३) ७/-
(उक्त तीनों भागों में छोटी-छोटी कहानियों का अनुपम संग्रह है।)
६. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ४) महासती अंजना ७/-
७. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ५) हनुमान चरित्र ७/-
८. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ६) ७/-
(अकलंक-निकलंक चरित्र)
९. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ७) १२/-
(अनुबद्धकेवली श्री जम्बूस्वामी)
१०. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ८) ७/-
(श्रावक की धर्मसाधना)
११. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ९) १०/-
(तीर्थंकर भगवान महावीर)
१२. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १०) कहानी संग्रह ७/-
१३. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ११) कहानी संग्रह ७/-
१४. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १२) कहानी संग्रह ७/-
१५. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १३) कहानी संग्रह
१६. जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १४ कहानी संग्रह ७/-
१७. अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह) ६/-
१८. पाहुड़-दोहा, भव्यामृत-शतक व आत्मसाधना सूत्र ५/-
१९. विराग सरिता (श्रीमद्जी की सूक्तियों का संकलन) ५/-
२०. लघुतत्त्वस्फोट (गुजराती)
२१. भक्तामर प्रवचन (गुजराती)

जन्म

वीर संवत् 2451
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय

8 दिसम्बर, 1987
पौष वदी 3, सोनगढ़

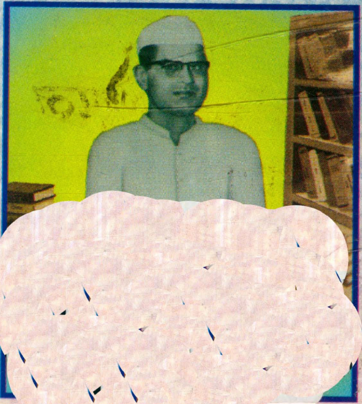

सत्समागम

वीर संवत् 2471
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा

वीर संवत् 2473
फागण सुदी 1 (उम्र 23 वर्ष)

ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इसप्रकार करते थे –

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखनेवाला नहीं मिलेगा....।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण** – इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), जैनधर्म की कहानियाँ (भाग 1 से 6), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनेक बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ....मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ – यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

मुद्रण व्यवस्था : जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर फोन : 0141-700751 फैक्स : 0141-519265